धर्मायण

(धार्मिक, सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय चेतना की पत्रिका)

मूल्य : 20 रुपये

अंक 96
आषाढ़ 2077 वि. सं.

गुरुतत्त्व-विशेषांक

दिनांक 8 जून, 2020 से मन्दिर में दर्शन आरम्भ होने पर
हाथ धोने तथा सेनिटाइजर की व्यवस्था।

महावीर कैंसर संस्थान में सभी रोगियों एवं उनके परिचारकों के बीच भोजन वितरण

धर्मायण

Title Code- BIHHIN00719

आलेख-सूची

1. **गुरु का स्वरूप-विवेचन** (सम्पादकीय) 3
2. **गुरुपटलम्** (पाण्डुलिपि से सम्पादन) 5
3. **गुरुकृपा से ही सच्चा ज्ञान**
   –पं. शशिनाथ झा 12
4. **रामावत संगत : दिव्य गुरु हनुमानजी से दीक्षा का विधान**
   –आचार्य किशोर कुणाल 16
5. **'शिष्यस्तेऽहम्' : गीता के परमगुरु श्रीकृष्ण**
   –डा. सुदर्शन श्रीनिवास शाण्डिल्य 23
6. **परमगुरु अर्थात् ईश्वर से दीक्षा का विधान**
   –श्री अंकुर पंकजकुमार जोषी 28
7. **महिमा गुरु की**
   –पं. मार्कण्डेय शारदेय 32
8. **वैदिक गुरु-तत्त्व**
   –श्री अरुण कुमार उपाध्याय 37
9. **तुलसीदास की गुरु-विषयक अवधारणा**
   –डॉ. श्रीकांत सिंह 48
10. **गुरुतत्त्व : बोध**
    –श्री विष्णु प्रभाकर 52
11. **राम-कथा**
    –आचार्य सीताराम चतुर्वेदी की लेखनी से 54
12. **गंगा और भारत**
    –डा. (प्रो.) रामविलास चौधरी 62
13. **हिन्दी-वाङ्मय में नदीश्वरी गंगा**
    –डॉ. जितेन्द्रकुमार सिंह 'संजय' 67

मन्दिर समाचार, मातृभूमि-वंदना, व्रतपर्व 77-80

पत्रिका में प्रकाशित विचार लेखक के हैं। इनसे सम्पादक की सहमति आवश्यक नहीं है। हम प्रबुद्ध रचनाकारों की अप्रकाशित, मौलिक एवं शोधपरक रचनाओं का स्वागत करते हैं। रचनाकारों से निवेदन है कि सन्दर्भ-संकेत अवश्य दें।

धार्मिक, सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय चेतना की पत्रिका

अंक : 96
आषाढ़ 2077 वि. सं.
6 जून-5 जुलाई, 2020

प्रधान सम्पादक
आचार्य किशोर कुणाल

सम्पादक
भवनाथ झा

पत्राचार :
महावीर मन्दिर,
पटना रेलवे जंक्शन के सामने
पटना- 800001, बिहार
फोन : 0612-2223798
मोबाइल : 9334468400
(WhatsApp)
E-mail: mahavirmandir@gmail.com
Web: www.mahavirmandirpatna.org
www.m.mahavirmandirpatna.org

मूल्य : बीस रुपये

पाठकीय प्रतिक्रिया

(अंक सख्या 95, ज्येष्ठ, 2077 वि.सं.)

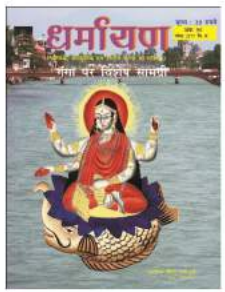

अभी श्रीमान् किशोर कुणालजी का आलेख आद्योपान्त पढ़ा। उनका यह शोधपूर्ण निबन्ध नयनोन्मेषक तर्क से परिपूर्ण है। श्रीराम के सम्पूर्ण चरित्र का अवगाहन करते हुए शम्बूक वध का प्रसंग एक अवांछनीय बाधक के रूप में सदैव चिन्तित करता था। मेरे विचार से सभी रामकथानुरागियों के लिए यह आलेख अत्यन्त उपादेय है । विशेषकर कथावाचकों को यह समुचित मार्गदर्शन देगा, ऐसी शुभेच्छा।

सच्चिदानन्द झा

http://m.mahavirmandirpatna.org/dharmayan-vol-95-ganga-ank/ पर पाठकीय प्रतिक्रिया के रूप में

संभवत: गंगा पर इतनी जानकारी एक स्थान पर अन्यत्र उपलब्ध नहीं। सूचनाएँ एवं लेख अत्यंत प्रामाणिक हैं।

कालांतर में ऐसा प्रतीत होता है गंगा भारत की नदियों के लिए जाति (नदी जाति) वाचक या भाव वाचक संज्ञा हो गई। जैसे दक्षिण भारत में विस्तार के कारण कावेरी को दक्षिण गंगा कहा गया। सम्पूर्ण कावेरी क्षेत्र पर विजय के उपरांत चोल राज राजराजा को गंगेयकोंड चोल की उपाधि दी गई।

–डा. अरविन्द महाजन

पुरातत्त्व एवं संग्रहालय निदेशालय,

कला, संस्कृति और युवा विभाग, बिहार

आपको यह अंक कैसा लगा? इसकी सूचना हमें दें। पाठकीय प्रतिक्रियाएँ आमन्त्रित हैं। इसे हमारे ईमेल mahavirmandir@gmail.com **पर अथवा** whatsApp. **सं. +91 9334468400 पर भेज सकते हैं।**

'धर्मायण' का अगला अंक नाग-पूजन विशेषांक के रूप में प्रस्तावित है। इस अवसर पर सनातन धर्म, लोक-जीवन अथवा धार्मिक-साहित्य में गुरु की अवधारण से सम्बन्धित आलेख आमन्त्रित हैं।

बहुत आनंदित लेखों का संग्रह है। खासकर महाराज रमेश्वर सिंहजी के भीष्म प्रतिज्ञा के विषय मे जो आपने अपने इस पत्रिका के माध्यम से परिचय करवाया उसके लिये मैं आपका सदैव ऋणी रहूंगा। एक शंकराचार्य जी थे, एक पंडित जगन्नाथ मिश्र 'तर्क पंचानन' थे और एक हमारे नरेश थे! धन्य हैं ये भूमि। गुरुपूर्णिमा के दिन आने वाली पत्रिका को पढ़ने की जिज्ञासा अब कितनी बढ़ गयी, मैं शब्दों में उसका विवरण नही कर सकता।

– हर्षवर्द्धन

देवघर, झारखण्ड

गुरु का स्वरूप-विवेचन

सम्पादकीय आलेख

भवनाथ झा

पांचरात्र आगम में नारद पाञ्चरात्र के अन्तर्गत भारद्वाज-संहिता (नारदपाञ्चरात्र (भारद्वाजसंहिता), टीकाकार सरयू प्रसाद मिश्र, खेमराज श्रीकृष्णदास, मुंबई, संवत् 1962) गुरु के सम्बन्ध में विस्तृत विवेचन उपस्थापित करता है। इसके अनुसार केवल प्रपत्ति यानी शरणागति मोक्ष का साधन हो सकती है। इस आगम का मत है कि

प्राप्तुमिच्छन् परां सिद्धिं जनः सर्वोऽप्यकिञ्चनः।
श्रद्धया परया युक्तो हरिं शरणमाश्रयेत्॥1.14॥

अर्थात् परम सिद्धि पाने के लिए आम लोग परम श्रद्धा के साथ हरि की शरण में जावें।

यहाँ शरणागति के लिए अधिकारी व्यक्तियों के सम्बन्ध में स्पष्ट अवधारण है कि जाति, कुल, लिङ्ग, गुण, क्रिया, स्थान, एवं काल इन सात अवस्थाओं का कोई महत्त्व नहीं है। इनसे ऊपर उठकर सभी लोग प्रपत्ति के अधिकारी हैं। वह व्यक्ति किसी जाति का रहे, किसी भी कुल में जन्मा हो, स्त्री हो या पुरुष हो, उदार हो या स्वार्थी हो, योग आदि करता हो अथवा न करता हो, पवित्र तीर्थस्थान में हो या उससे दूर रहे, ज्योतिष शास्त्र विहित शुभ समय हो या न हो, यदि उसके पास केवल श्रद्धा है तो वह हरि की शरणागति का अधिकारी है। यही पर प्रपत्ति के तीन साधन कहे गये हैं- कायिक, वाचिक एवं मानसिक। इन तीनों साधनों के लिए गुरु की आवश्यकता मानी गयी है, जिसके सन्दर्भ में गुरु का विस्तृत विवेचन हुआ है।

गुरुणा योभिमन्येत गुरुं वा योभिमन्यते।
तावुभौ परमां सिद्धिं नियमादुपगच्छति॥33॥

अर्थात् गुरु जिसे मानते हों अथवा जो गुरु को मानता हो, वे दोनों नियमपूर्वक सिद्धि प्राप्त करते हैं। यहीं पर गुरु के प्रकार का संकेत हमें उपलब्ध हो जाता है। यदि गुरु शरीरधारी हैं तो गुरु भी शिष्य को अपना मानते हैं और शिष्य भी गुरु के प्रति समर्पित होते हैं। अर्थात् दोनों ओर से परस्पर लगाव आवश्यक है। किन्तु यहाँ पर 'वा' शब्द का प्रयोग किया गया है, जिसका अर्थ है वैकल्पिक। यदि केवल गुरु भी शिष्य को अपना मानता हो, शिष्य के मन में गुरु के प्रति समुचित समर्पण न हो, तब भी सिद्धि होती है। यदि गुरु अदृश्य हों, दिव्य हों, जिन्हें शिष्य पहचान न रहा हो, तब भी सिद्धि की बात यहाँ कही गयी है। यह ईश्वर, ऋषि आदि को गुरु के रूप में मानने का सिद्धान्त है। शास्त्रों के अनुसार ईश्वर अपनी संतति के प्रति सर्वदा उदार रहते हैं। ईश्वर की प्रतिज्ञा है कि न मे भक्तः प्रणश्यति। ईश्वर के वास्तविक स्वरूप का ज्ञान हो अथवा न हो ईश्वर यदि किसी व्यक्ति को अपना मानते हैं तो वह भी सिद्धि का अधिकारी है। अतः ईश्वर भी इस सिद्धान्त से गुरु के रूप में भी आराध्य हैं।

शरीरधारी गुरु में भी ऐसे व्यक्ति हो सकते हैं, जिन्हें शिष्य अपना गुरु मानता हो, पर गुरु को मालूम न रहे कि अमुक व्यक्ति मेरा शिष्य है। ऐसी स्थिति में यदि शिष्य उन्हें

गुरु मानकर कोई कार्य करता हो तो उसे भी सिद्धि मिलेगी। जैसा कि हम एकलव्य आदि की कथा में देखते हैं। यह स्थिति मानस गुरु को परिभाषित करता है।

तीसरे प्रकार के वे गुरु हैं, जो शिष्य को भी जान रहे हैं और शिष्य भी उन्हें गुरु मान रहा है। इस विवेचन से स्पष्ट है कि गुरु के तीन प्रकार होते हैं–

1. दिव्य-गुरु– ईश्वर, जो सभी अज्ञानी जनों को भी शिष्यवत् देखते हैं। ये गुरु शिष्य को व्याघ्रशावक के समान पकड़े रहते हैं। जिस प्रकार बाघिन अपनी संतान को उठाकर एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाती है। इस स्थिति में गिरने का डर होता ही नहीं है।

2. मानस गुरु– ऐसे शरीरधारी गुरु, जिनके प्रति केवल शिष्य के मन में गुरुत्व की भावना हो। ऐसे गुरु कपिशावकवत् गुरु से लटके होते हैं। जैसे बंदरनी का बच्चा अपनी माँ के पेट से चिपककर एक स्थान से दूसरे स्थान तक जाता है। यदि बच्चे से थोड़ी-सी भी भूल हुई तो वह गिर जायेगा।

3. उभयनिष्ठ गुरु– ऐसे शरीरधारी गुरु जिनके साथ रहकर शिष्य कायिक, वाचिक एवं मानसिक प्रपत्ति सीखता हो। गुरु के साथ दिनचर्चा में रहता हो, गुरु के आदेशों के पालन करता हो तथा उनके पास बैठकर शास्त्राभ्यास करता हो। ऐसे गुरु शास्त्र के अभ्यास के लिए अनिवार्य माने गये हैं।

इस प्रकार उपर्युक्त तीनों गुरुओं में से एक का भी सहारा लेना आवश्यक माना गया है। लोग यह समझते हैं कि पुस्तक इत्यादि में पढकर हम जब सबकुछ सीख ही लेते हैं तब गुरु की क्या आवश्यकता है। इसका खण्डन करते हुए कहा गया है कि ऐसे लोग जो जानबूझ कर गुरु के पास जाने से परहेज करते हैं और ब्रह्मपद पाना चाहते हैं, वे स्वयं को काले रास्ते पर ले आते हैं, अथवा उनकी आत्माहुति आग में व्यर्थ लकड़ी डालने के समान हो जाती है।

ज्ञानतस्त्वनुपेतस्य ब्रह्मचर्यमभीप्सतः।
वृथैवात्मसमित्क्षेपो जायते कृष्णवर्त्मनि॥34॥

इसकी टीका में इसे स्पष्ट किया गया है कि– **पुस्तकनिरीक्षणादिना ज्ञानं सम्पाद्य आचार्यसमाश्रयणमन्तरेण प्रपत्तिमनुष्ठितां वेषसंवादकत्वेन प्रपत्त्यनुष्ठानपर्यवसानेन सिद्धहेतुत्वमिति न किञ्चित्फलमिति।**

इस प्रकार, प्रपत्ति के मार्ग में उपर्युक्त तीनों गुरुओं में से एक को मानना अनिवार्य है। यही वह विवेचन है जो भक्ति के मार्ग में आध्यात्मिक दीक्षा को अनिवार्य मानता है। ऐसी स्थिति में यदि कोई व्यक्ति गुरु के साथ रहकर लौकिक एवं अलौकिक उपदेश ग्रहण न कर रहा हो, तो दिव्यगुरु के रूप में ईश्वर का आश्रय लेना सर्वश्रेष्ठ हैं, क्योंकि ऐसे गुरु स्वयं शिष्य का ध्यान रखा करते हैं।

इसलिए जहाँ गुरुपरम्परा का स्मरण किया गया है, वहाँ सबसे पहले उसके परमगुरु का नाम लिया गया है। जैसे रामानन्दाचार्य की परम्परा में गुरु-स्मरण इस प्रकार है–

सीतारामकृतारम्भां रामानन्दार्यमध्यमाम्।
अस्मदाचार्यपर्यन्तां वन्दे गुरुपरम्पराम्॥

यहाँ सबसे पहले परम गुरु, उसके बाद मानस गुरु और अन्त में लौकिक उभयनिष्ठ गुरु का स्मरण किया गया है।

प्रत्येक पूजन में परमगुरु के नाम से सबसे पहले अर्घ्य दिया जाता है।

***

गुरुपटलम्

गुरुपटलम् नामक यह गुरुस्तोत्र वस्तुतः उस परमगुरु की स्तुति है, जो अनादिनिधन परम तत्त्व हैं। इस स्तोत्र की विशेषता है कि इसमें गुरु के रूप में परमेश्वर का विराट् वर्णन किया गया है। साधक जब ईश्वररूप गुरु का सान्निध्य प्राप्त करता है तब वह उसी परमतत्त्व में लीन हो जाता है, उसे हर प्रकार की सिद्धि प्राप्त हो जाती है।

मेरी जानकारी में यह **गुरुपटल** अभीतक अप्रकाशित रचना है, जिसका सम्पादन प्रथम बार यहाँ हिन्दी अनुवाद के साथ किया जा रहा है। इसकी पाण्डुलिपि की मूल प्रति श्रीरघुनाथ मन्दिर, जम्मू-काश्मीर के धर्मार्थ ट्रस्ट पुस्तकालय में संरक्षित है। इसकी परिग्रहण संख्या 4795, आलमारी सं. 21 तथा सेल्फ सं. 5 है। इसमें कवर सहित दो पत्र हैं तथा कुल दो पृष्ठों पर यह गुरुपटल प्राचीन देवनागरी में लिखित है। इस पाण्डुलिपि को ई-गंगोत्री नामक संस्था ने स्कैन कर www.archive.org पर साहित्यिक उपयोग के लिए सार्वजनिक कर दिया है। अतः धर्मार्थ ट्रस्ट एवं ई-गंगोत्री के प्रति आभार व्यक्त करते हुए इसे सम्पादित कर रहा हूँ। मुझे आशा है कि साधक एवं शोधार्थी दोनों इस सम्पादित पाठ से लाभान्वित होंगे। - भवनाथ झा

ॐ गणेशाय नमः

श्रीपार्वत्युवाच॥
देवदेव महादेव सर्वज्ञ सकलेश्वर।
त्वत्प्रसादेन सकलं श्रुतं हर्षविवर्द्धनम्॥1॥
देवदानवगन्धर्वससुरासुरपन्नगाः ।
सचराचरजन्तूनां कथं सिद्धिर्महेश्वर॥2॥

हे देवाधिदेव महादेव, आप तो सब कुछ जानते हैं, सबके स्वामी भी हैं। आपकी कृपा से मैंने मन प्रसन्न करने देनेवाली सारी बातें सुनीं। अब यह बतलाइये कि देवता, दानव, गन्धर्व, देवता, असुर, नाग तथा चलनेवाले और न चलनेवाले दोनों तरह के प्राणियों की सिद्धि कैसे होगी?

ईश्वर उवाच।

शृणु देवि परं गुह्यं ज्ञातानां ज्ञातमुत्तमम्।

येन सिद्ध्यन्ति ऋषयः सर्वदेवाश्च मानवाः।।3।।

महादेव बोले- हे देवी, सुनो। मैं बहुत गूढ़ बात बतलाता हूँ। मैं जितनी बातें जानता हूँ, उनमें भी इसे मैं सबसे अच्छी तरह जानता हूँ। इस गूढ़ रहस्य से सभी ऋषि, मनुष्य तथा सभी देवता सिद्धि पाते हैं।

श्रीगुरुर्देवदेवेन्द्रो दिव्यमूर्तिर्दिवीश्वरः।

स्वयंशून्यप्रकाशस्य कर्ता हर्ता प्रवर्तकः।।4।।

श्रीगुरु देवता हैं, वे इन्द्र के समान हैं, उनका स्वरूप तो अलौकिक है, वे दिव्य लोक के देवता हैं। स्वयं शून्यरूप प्रकाश को फैलानेवाले, मिटानेवाले तथा उत्पन्न करनेवाले वे ही हैं।

अनन्तानन्तलीलाश्च नानारूपजनेश्वरः।

सृष्टिकर्ता च सर्वेष्टदाता भोक्ताशिरोमणिः।।5।।

उनका कभी अन्त नहीं होता, उनकी लीला भी अनन्त है। वे अनेक रूपों में लोकों के स्वामी हैं। वे ही सृष्टि करनेवाले हैं, सभी वस्तुएँ देतें हैं तथा वे ही सारी वस्तुओं का भोग करनेवाले भी हैं।

योगेन्द्रो ज्योतिरूपश्च सर्वजन्तुषु व्यापकः।

ततः श्रेष्ठः सर्वनिष्ठस्तपस्तत्त्वादिनायकः।।6।।

वे योग के स्वामी हैं, प्रकाश रूप में विद्यमान हैं तथा सभी प्राणियों में निवास करते हैं। उन प्राणियों से श्रेष्ठ हैं, किन्तु सबमें निवास करते हैं, तपस् आदि तत्त्वों के नायक हैं।

आदिकर्ता अनादिश्च सगुणो निर्गुणः प्रभुः।

उत्पत्तिप्रलयाकारो भूतात्मा चाखिलेश्वरः।।7।।

इस संसार को सबसे पहले उन्होंने ही बनाया। लेकिन उनका कभी जन्म नहीं हुआ। वे सगुण भी हैं तथा निर्गुण भी हैं। उत्पत्ति और प्रलय ही उनका स्वरूप है। वे सभी जीवों की आत्मा के रूप में अवस्थित सबके स्वामी हैं।

मन्त्रमूर्तिर्महाशक्तिः सर्वस्यार्थस्य पूरकः।

निर्धनस्य हि दाता वान्धस्य ज्योतिः प्रकाशनः।।8।।

वे परम गुरु ही मन्त्र के स्वरूप में होते हैं। इनमें बहुत शक्ति है, वे सबके मनोरथ को पूरा करते हैं। निर्धन को धन देते हैं, अन्धे को ज्योति देते हैं तथा उन्हें चमकाते हैं।

ज्ञानमूर्तिर्निराधार आधारः परमेश्वरः।

परं ब्रह्म परं शून्यमगम्यं च परात्परम्।।9।।

ज्ञान के रूप में वे किसी भी आधार के परे हैं लेकिन सबके आधार वे ही हैं। उन्हें हम परमेश्वर कहते हैं। वे परम ब्रह्म परम शून्य हैं, उनके पास हम सीधे-सीधे नहीं पहुँच सकते हैं। वे परम से भी आगे हैं।

अत्यन्तालेखपुरुषो लक्षभेदविवर्जितः।
रोमे ब्रह्माण्डकोटिः स्यात्सर्वस्य प्रतिपालकः॥10॥

वे आलेखपुरुष हैं अर्थात् उनका वर्णन शब्दों में लिखकर नहीं किया जा सकता है। यद्यपि प्राणी लाखों में बँटे हुए हैं, पर उनमें स्थित परम गुरु को भिन्न नहीं किया जा सकता है। उनके एक-एक रोम में करोड़ों ब्रह्माण्ड हैं। वे सबके पालन करनेवाले हैं।

ॐ गुँ गुरवे नमः।
ॐ नमः श्रीगुरुदेवाय परमपुरुषाय निरञ्जनाय स्वाहा।
ॐ नमः श्रीगुरुदेवाय सर्वदेववश्यकराय सर्वारिष्टविनाशाय सर्वमन्त्रच्छेदनाय सर्वरोगमर्दनाय त्रैलोक्यवशीकराय पुरुषमोहनाय (पुरुषमानय आनय) गुँ रुँ ॐ ॐ ॐ स्वाहा।
ॐ गुरुदेवाय विद्महे परमगुरुभ्यो धीमहि तन्नो गुरुः प्रचोदयात्॥
ॐ गुरुर्ब्रह्मरन्ध्रे स्याद् गायत्री च ललाटके।
रुद्रदेवश्च भ्रुकुट्योः हृदये विष्णुदेवता॥11॥

गुरु ब्रह्मरन्ध्र में अवस्थित हों, ललाट पर गायत्री, दोनों भौंहों में रुद्रदेव तथा हृदय में विष्णुदेवता अवस्थित रहें।

नासिकायां वासुदेवो नेत्रयोश्चन्द्रसूर्ययोः।
कर्णयोः शुक्रधिषणावुत्तमाङ्गे ऋषीश्वराः॥12॥

नाक में वासुदेव, दोनों आँखों में सूर्य एवं चन्द्र, दोनों कानों में शुक्र एवं बृहस्पति तथा गला से ऊपर के अंगों में ऋषिश्रेष्ठ अवस्थित रहें।

दक्षस्कन्धे च वरुणो वामस्कन्धे यमः सदा।
दक्षहस्ते सर्वदेवो वामहस्ते च सिद्धयः॥13॥

दाहिने कंधे में वरुण, बायें कंधे में यमराज, दाहिने हाथ में सभी देवगण और वायें हाथ में सबी सिद्धियाँ वास करें।

दक्षहस्ताङ्गुलावर्तुस्तीर्थं वामाङ्गुलौ महत्।
पृष्ठे स्याद्वै महामाया उदरे वै नदी सदा॥14॥

दाहिने हाथ की अंगुलियों में सारी ऋतुएँ, वायें अंगुली में सभी तीर्थ, हाथ के पीछे महामाया तथा पेट में नदी अवस्थित रहें।

कण्ठे धर्मदेवता च तत्सन्धावन्नदेवता।
मुखे सरस्वती तिष्ठेद् दन्तेषु योगिनीगणाः॥15॥

कण्ठ में धर्मदेव, उसकी जोड़ पर अन्नदेव, मुख में सरस्वती तथा दाँतों में योगिनियाँ वास करें।

ओष्ठयोः किन्नराः सर्वे जिह्वां विद्याधरः सदा।
गन्धर्वा दन्तसन्धौ च तन्त्रीणि वज्रमेव च॥16॥

दोनों होठों में सबी किन्नर, जीभ में विद्याधर, दाँतों के जोड़ों पर सबी गन्धर्व तथा नसों में वज्र अवस्थित रहें।

दक्षहस्ते च देवाः स्युः पितरो वामके सदा।
नाभौ त्वग्निदेवता च (वरुणो) दक्षपृष्टके॥17॥

दाहिने हाथ में सभी देव, बायें हाथ में पितर, नाभि में अग्निदेव तथा दाहिनी और पीठ की पर वरुण स्थित रहें।

गणेशः स्यात्मेढ्रे वै (दक्षः) स्याद्दक्षपञ्जरे।
पंजरे वामके सुराः दक्षकुक्षौ समुद्रकः॥18॥

गणेश शिश्न पर स्थित रहें। दाहिनी ओर पसलियों पर (दक्ष) वास करें। वायीं और पसलियों पर सभी देवता वास करें और दाहिनी कोख पर समुद्रदेव वास करें।

वामकुक्षौऽव्यान्मृत्युः कट्यां पृथ्वी सदा स्थिता।
इन्द्रियेषु कल्पवृक्षौ दक्षकन्धञ्च पुण्यकः॥19॥

बायीं ओर से कोख की रक्षा यमराज करें। कमर पर पृथ्वी हमेशा वास करें। इन्द्रियों में कल्पवृक्ष वास करें तथा दाहिने कन्धे की रक्षा पुण्य देवता करें।

वामकन्धे च पापः स्यादासनेषु गणः सदा।
अस्थिषु पर्वताः सर्वे गुदे ताराधिपो मतः॥20॥

बायें कन्धा पर पाप, आसनों पर गणदेवता, हड्डियों पर सभी पर्वत तथा मलद्वार पर चन्द्रमा वास करें।

नखेषु नागलोकाः स्यात् नखसन्धिषु पक्षिणः।
दक्षजङ्घे भैरवः स्यात् वामजङ्घे च क्षत्रपः॥21।

नाखूनों में नागलोक, नाखूनों के जोड़ों पर पक्षिगण, दाहिनी जंघा पर भैरव तथा बायीं जंघा पर क्षत्रप अवस्थित रहें।

ग्रन्थिषु वै राट् सर्वे गुल्फयोः राक्षसाः सदा।
पादपृष्ठे च कामधेनुः पन्नखे भूतनायकाः॥22॥

शरीर की सभी गाँठों पर राजा अवस्थित हों, पिंडलियों पर राक्षस गण, तलुवा पर कामधेनु तथा पैरों के नाखूनों पर भूतनायक अवस्थित रहें।

अङ्गुलीषु च कृमयः कूर्मः पादतलस्य वै।
रोमे वनस्पतिर्नृणां नानारूपं प्रवर्तते॥23॥

अङ्गुलियों में कृमियाँ, पैर के तलुओं में कूर्म, रोओं में वनस्पति अवस्थित हों। इस प्रकार मनुष्यों में नाना रूप में परम गुरु रहते हैं।

एवं वैराटरूपश्च गुरुर्देवो निरञ्जनः।
परानन्दः परं शून्यं परं पूर्णप्रकाशनम्॥24॥
परं ज्योतिः परं तत्त्वं परं ज्योतिः परात्परम्॥

इस प्रकार विराट रूप में गुरुदेव निरञ्जन हैं, परम आनन्द रूप हैं, परम शून्य हैं और पूर्ण प्रकाश से युक्त हैं। वे परम ज्योति, परम तत्त्व, परम ज्योति एवं परम से भी परम हैं।

श्री ईश्वर उवाच।

ॐ शृणु देवि परं तत्त्वं गुह्यानां गुह्यमुत्तमम्।
दुर्लभं देवदैत्यानां सर्वेषां शक्तिदायकम्॥25॥
करुणात्मा कृपासिन्धुश्चित्तचिन्तामणिः सदा॥
विमथ्य चतुरो वेदान् मन्त्रशास्त्रमनेकधा॥26॥
पिबन्ति सारतत्त्वज्ञास्तक्रमुद्धृत्य पण्डिताः।

श्री महादेव बोले- हे देवी, परम तत्त्व सुनें जो गूढ़ों में भी गूढ़ है। वह देवताओं और दैत्यों के लिए भी दुर्लभ है, तथा सभी को शक्ति प्रदान करनेवाला है। चारों वेदों को तथा अनेक प्रकार से मन्त्रशास्त्र को मथकर पण्डितगण उसका सार तत्त्व निकालकर मक्खन के रूप में पीते हैं।

नमस्ते गुरुरूपाय परमानन्दरूपिणे॥27॥
रक्षकाय भक्षकाय वृद्धिक्षयाय वै नमः।
परमानन्दरूपाय विश्वरूपाय वै नमः॥28॥
नमः पूर्णप्रकाशाय विश्ववीर्याय वै नमः॥
विश्वाधाराय वै तुभ्यं विश्वकाराय वै नमः॥29॥
नमस्तेऽस्तु अनन्ताय आद्यानन्ताय वै नमः।
निरञ्जननिराकार नमः संसारपालिने॥30॥

परमानन्द रूप, गुरु के रूप, मंगल के रक्षक, अमंगल के संहारक तथा वृद्धि और क्षय के स्वरूप को प्रणाम। परम आनन्द रूप, विश्वरूप, पूर्ण प्रकाश रूप, तथा विश्व की शक्ति के रूप परम गुरु को प्रणाम। विश्व के आधार, विश्व की कृति में स्थित, अविनाशी तथा आदि ख्अंत से रहित परम गुरु को प्रणाम। निरंजन एवं निराकार, संसार का पालन करनेवाले परमगुरु को प्रणाम।

स्तोत्रं वै गुरुदेवस्य गुह्याद् गुह्यतरं परम्।
दीपकं मन्त्रतन्त्राणां सर्वकिल्विषनाशनम्॥31॥

गुरुदेव का यह स्तोत्र गूढ़ों में भी परम गूढ़ है। यह मन्त्रों एवं तन्त्र को प्रकाशित करनेवाला तथा सभी पापों का नाशक है।

सर्वविषादहरणं सर्वरोगादिनाशनम्।
व्याघ्रचौरादिशमनं मारीभयविनाशनम्॥32॥

यह सभी दुःखों, रोगों, बाघ-चोर आदि से भय तथा महामारी का नाश करनेवाला है।

संग्रामे शत्रुसङ्घे च सागरे पर्वते वने।
श्मशाने दुष्टसङ्घे च भयनाशकरं परम्॥33॥

युद्ध, शत्रुओं के बीच, समुद्र, पर्वत, जंगल, श्मशान, दुष्टों के बीच में यह भय दूर कर देता है।

य एतत्पठते नित्यं पाठयेद्वा समाहितः।
विमुच्य सर्वपापेभ्यो निर्भयो जायते नरः॥34॥

जो प्रतिदिन एकाग्र होकर इसका पाठ करता है अथवा पाठ कराता है वह सभी पापों से मुक्त होकर मनुष्य निर्भय हो जाता है।

ज्ञानवान्तपसा साधुर्योगीशो जायतेऽचिरम्।
यं यं कामयते कामं तं तं प्राप्नोति निश्चितम्॥35॥

तपस्या से ज्ञानी साधु शीघ्र ही योगियों में श्रेष्ठ बन जाता है। वह जो जो चाहता है, उसे सब मिल जाते हैं।

लभते सर्वसिद्धिं च त्रैलोक्यवशमानयेत्।
सर्वसिद्धीश्वरो भूत्वा गुरुसांनिध्यतां व्रजेत्॥ 36॥

वह सभी प्रकार की सिद्धियाँ पाकर तीनों लोकों को वश में कर सकता है और सभी प्रकार की सिद्धियों का स्वामी बनकर उस परम गुरु का सामीप्य पाता है।

लक्षैकचायुतं मन्त्रपुरश्चर्याविधिः स्मृतः।
सकलां सिद्धिमाप्नोति गुरोः पादाब्जचिन्तनात्॥37॥

एक लाख दस हजार की संख्या में इस मन्त्र की पुरश्चरण निधि कही गयी है। गुरु के चरणकमल के ध्यान से वह सभी सिद्धियाँ पा लेता है।

गुरुर्माता पिता भ्राता सखा चैव सहोदरः।
तत्त्वं परं गुरोर्नास्ति सर्वदेवमयो यतः॥38॥

गुरु माता, पिता, भाई, मित्र, सोदर होते हैं। गुरु से आगे कोई तत्त्व नहीं है, क्योंकि गुरु सभी देवों के स्वरूप हैं।

पठन्ति वेदचत्वारो मन्त्रशास्त्रमनेकधा।
गुरुमन्त्रविहीनानां सिद्धिर्नैवोपजायते॥39॥

चारों वेद पढ़े जायें और मन्त्रशास्त्र अनेक प्रकार से पढ़े जायें, फिर भी गुरुमन्त्र से रहित होकर सिद्धि नहीं हो सकती है।

नातः परतरो देवो नातः परतरस्तपः।
नातः परतरो यज्ञस्तीर्थं नातः परं क्वचित्॥40॥

गुरु से आगे कोई देव नहीं, न ही कोई तपस्या होती है। इससे ऊपर कोई यज्ञ नहीं, न ही कोई तीर्थ इससे अधिक होता है।

निन्दकः पातकी चैव कृतघ्नो गोघ्न एव च।
मुच्यते सर्वपापेभ्यो सकृदुच्चारणादिदम्॥41॥

निंदक, पापी, कृतघ्न, गो-वध का पापी भी एक बार परम गुरु का नाम लेकर सभी पापों से मुक्त हो जाता है।

काशीक्षेत्रं निवासस्तव चरणजलं जाह्नवी श्रीगुरोर्नः
साक्षाद्विश्वेश्वरस्त्वं तव वचनतया तारकब्रह्मबोधः।
त्वच्छ्रीपादाङ्किताभूरिह भवति गया त्वत्प्रसङ्गः प्रयाग-
स्त्वत्तोऽन्यत् तीर्थदेवं क्वचिदपि न वयं न प्रतीमः पृथिव्याम्॥42॥

हे परम गुरु, आपकी निकटता ही हमारे लिए काशी क्षेत्र में निवास है, आपका चरणोदक गंगाजल है, आप साक्षात् विश्वेश्वर के स्वरूप हैं, आपके वचन के रूप में ही ब्रह्म का बोध होता है। आपके श्रीचरण से अंकित भूमि ही हमारे लिए गया है, आपके साथ सङ्गम ही प्रयाग है। आपसे भिन्न इस पृथ्वी पर कोई दूसरा तीर्थ हम नहीं देखते हैं।

संसारसिन्धोस्तरणैकहेतून् वंदे गुरून् नित्यशिवस्वभावान्।
रजांसि येषां पदपङ्कजानां तीर्थाभिषेकस्वयमावहन्ति॥42॥

संसार रूपी समुद्र को पार करने के लिए एक मात्र उपाय जो मंगलमय स्वभाव वाले गुरु हैं उन्हें प्रतिदिन प्रमाम करता हूँ, जिनके कमल के पराग के समान चरण-कमल की धूल अपने आप में तीर्थजल से अभिषेक के समान है।

श्रीगुरुं परमात्मानन्दं वंदे स्वानन्दविग्रहम्।
यस्य सान्निध्यमात्रेण चिदानन्दायते तनुः॥43॥

श्रीगुरु जो परमानन्द स्वरूप हैं, आनन्द की मूर्ति हैं और जिनके सामीप्य से शरीर चिदानन्दस्वरूप हो जाता है, ऐसे गुरु को प्रणाम।

इति श्रीरुद्रयामले तन्त्रे पार्वतीशिवसंवादे
परमस्य गुरोः पटलं संपूर्णम्॥
॥शुभम्॥

लेखकों से निवेदन

'धर्मायण' का अगला अंक **नाग-पूजन विशेषांक** के रूप में प्रस्तावित है। श्रावण मास में भगवान् शिव का मास समझा जाता है। इसी मास में गंगा के दोनों तटों पर बिहार एवं बंगाल में भगवान् शिव के आभूषण के रूप में नाग-पूजन की परम्परा प्रचलित है। मौना-पंचमी, नागपंचमी, मधुश्रावणी आदि पर्व प्रमुखता से मनाये जाते हैं। महावीर हनुमानजी से सम्बद्ध घरी-पर्व भी इसी मास में लोक-पर्व के रूप में मनाया जाता है। इस अंक में परम्परा का लौकिक एवं शास्त्रीय स्वरूप पर विवेचन किया जायेगा। सन्दर्भ के साथ शोधपरक आलेखों का प्रकाशन किया जायेगा। अपना टंकित अथवा हस्तलिखित आलेख हमारे ईमेल mahavirmandir@gmail.com पर अथवा whatsApp. सं. +91 9334468400 पर भेज सकते हैं। प्रकाशित आलेखों के लिए पत्रिका की ओर से पत्र-पुष्प की भी व्यवस्था है।

साथ ही, यह अंक आपको कैसा लगा, इसपर भी आपकी प्रतिक्रिया आमन्त्रित है, जिससे प्रेरणा लेकर हम पत्रिका को और उन्नत बना सकें। अपनी प्रतिक्रिया उपर्युक्त पते पर भेज सकते हैं। डाक से भेजने हेतु पता है- सम्पादक, धर्मायण, महावीर मन्दिर, पटना जंक्शन के निकट, पटना, 800001

गुरु कृपा से ही सच्चा ज्ञान

पं. शशिनाथ झा

इस संसार में प्रत्येक प्राणी ज्ञान को लेकर ही उत्पन्न होता है। प्रकृति एवं अग्रजों के सम्पर्क से ज्ञान का विकास करता है। अपने जीवन-यापन, सुरक्षा आदि के ज्ञान से वह सन्तुष्ट हो जाता है। उनमें एक मानव ही ऐसा प्राणी है जो अपने ज्ञान का अनन्त विकास कर सकता है। उसकी बुद्धि निर्मल होती है और उसमें ज्ञान के अनन्त भण्डार को सञ्चित कर रखने की अद्‌भुत क्षमता है। उसमें पहले से कुछ नहीं रहता है। इसलिए जैसा ज्ञान, जैसी भाषा आदि उसमें अग्रजों के द्वारा दिया जाता है, वैसा ही वह ग्रहण कर लेता है। जैसे अग्नि जिस पर लगता है, अपना रूप वैसा ही बना लेता है- गोल वस्तु गोलाकार, खूँटे पर लम्बाकार और पर्वत पर पर्वताकार, वैसे ही ज्ञान भी अपने विषय के आकार का हो जाता है। अतः ज्ञान सीखने से बढ़ता है। शुक, मैना, बन्दर आदि भी सिखाने से प्रशिक्षित होते हैं। अतः प्रशिक्षण की बड़ी आवश्यकता है। परन्तु सिखानेवाला वही हो सकता है, जो स्वयं शिक्षणीय विषय का पूर्ण ज्ञाता हो- न हि स्वयमसिद्धः परान् साधयितुं समर्थः। अर्थात् स्वयं असिद्ध (अल्पज्ञ) व्यक्ति दूसरे को सिद्ध करने मे उपयुक्त नहीं हो सकता। अतः ज्ञान के विकास के लिए महान् ज्ञानी की आवश्यकता होती है। ऐसे ज्ञानवान् ज्ञानदाता को गुरु कहते हैं।

आवश्यकता-

हमारे पूर्वजों ने जो सहस्राब्दियों से ज्ञान का विकास किया उसे उत्तराधिकार के रूप में गुरु प्राप्त किये हुए रहते हैं। और उसके साथ अपने अनुभव एवं प्रयोग के आधार पर नवीन आविष्कृत ज्ञान का भण्डार भी उनके पास रहता है। अतः हम गुरु की शरण में जाकर अपने आचरण एवं परिश्रम से उनके ज्ञान को प्राप्त करने का पात्र बनते हैं। वह संचित ज्ञान गुरु की कृपा से ही प्राप्त हो सकता है। इस लिए हमारी संस्कृति निर्देश देती है- आचार्यदेवो भव- आचार्य (गुरु) को देवता मानने वाला बनो। छान्दोग्य उपनिषद् में कहा गया है-

आचार्यवान् पुरुषो वेद। (6.14.2.)

आचार्य की कृपा पानेवाला पुरुष तत्त्वों को जानता है। संसार के तत्त्वों को सूक्ष्म रहस्य को यथार्थ रूप में जानने के लिए कुश समिधा हाथ मं लेकर ऐसे गुरु के पास जायें जो वेदतत्त्वार्थज्ञाता सदाचारी ब्रह्मचनिन्तन में निरत हों-

तदर्थविज्ञानार्थं गुरुमेवाभिगच्छेत् समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्।

मुण्डकोपनिषद्, 1.2.12

गुरु शब्द की व्युत्पत्ति- गृणाति- उपदिशति वेदादिशास्त्रम् इन्द्रादिभ्यः स गुरुः बृहस्पतिः- जो इन्द्रादि देवों को वेद-स्मृति-व्याकरण आदि

* *पूर्व प्राचार्य एवं विभागाध्यक्ष, स्नातकोत्तर व्याकरणविभाग, कामेश्वर सिंह दरभंगा संस्कृत विश्वविद्यालय, दरभंगा (बिहार) 846008, चल दूरभाष- 9199475909*

शास्त्र का उपदेश देते हैं वे गुरु बृहस्पति हुए और हमें जो शास्त्र पढाते हैं, वे हमारे गुरु हुए। यहाँ 'गृ शब्दे' धातु से कर्ता के अर्थ में 'कृग्रोरुच्च' (उणादिसूत्र- 1.24) इस सूत्र से कु (उ) प्रत्यय और ऋकार को 'उर्' आदेश होने पर 'गुरु' शब्द बनाता है।- गीर्यते स्तूयते इति गुरुः अर्थात् जिसकी स्तुति की जाये। 'गृ निगरणे' धातु से भी 'कु' प्रत्यय करने पर गुरु होता है जिसका अर्थ है- गिरति अज्ञानम्, जो शिष्य के अज्ञान को निगल जाये, दूर कर दे, वह गुरु है।

आगमसार तन्त्र के अनुसार गकार सिद्धिदायक, और पापनाशक और उकार शम्भु स्वरूप है- इन तीनों का समुदाय गुरु है। फिर दूसरी तरह से कहते हैं कि ग=ज्ञान, र=तत्त्व, उ=शिव- इन तीनों के दाता गुरु हैं-

गकारः सिद्धिदः प्रोक्तः रेफः पापस्य दाहकः।
उकारः शम्भुरित्युक्तः त्रितयात्मा गुरुः स्मृतः॥
गकारो ज्ञानसम्पत्त्यै रेफस्तत्त्वप्रकाशकः।
उकारात् शिवतादात्म्यं दद्यादिति गुरुः स्मृतः॥

गुरु के प्रकार

गुरु के पाँच प्रकार होते हैं-

1. माता, पिता, ज्येष्ठ भ्राता, और स्वामी (पति या जीविकादाता)
2. आचार्य गुरु- उपनयन करानेवाला एवं वेद के रहस्य को समझानेवाला
3. विद्या गुरु- वेद, व्याकरण, ज्योतिष आदि शास्त्र पढानेवाला
4. दीक्षागुरु- इष्टदेवता के मन्त्र में दीक्षित करनेवाला
5. कुलगुरु- परम्परा में कुल का शास्त्रीय मार्गदर्शक

यो भावयति या सूते येन विद्योपदिश्यते।
ज्येष्ठ भ्राता च भर्ता च पञ्चैते गुरवः स्मृताः॥

कूर्मपुराण अध्याय 11

जो उत्पन्न करता है- पिता, जो जन्म देती है- माता, जो विद्या का उपदेश देते हैं- अध्यापक, ज्येष्ठ भाइ और भर्ता (भरण-पोषण करनेवाला) ये पाँच गुरु कहे गये हैं।

गुरुं चैवाप्युपासीत स्वाध्यायार्थं समाहितः।

याज्ञवल्क्य-स्मृति- 1.2.6

प्रातःकाल स्नान, सन्ध्यावन्दन, देवपूजा के बाद स्वाध्याय के लिए संयमपूर्वक गुरु के पास जाना चाहिए, इसी तरह सायंसन्ध्या के बाद भी उनकी सेवा में उपस्थित होकर अध्ययन करें।

जिनसे लौकिक, वैदिक, आध्यात्मिक किसी प्रकार का ज्ञान प्राप्त किया हो उनको प्रणाम सबसे पहले करना चाहिए-

लौकिकं वैदिकं वापि तथाध्यात्मिकमेव च।
आददीत यतो ज्ञानं तं पूर्वमभिवादयेत्॥

मनुस्मृति- 2.117

गुरु के चरणस्पर्श से (दायें हाथ से दायें पैर और बायें हाथ से बायें पैर छूकर) आरम्भ कर उठकर दोनों हाथों को जोड़कर मस्तक लगाकर झुकते हुए गुरु को प्रणाम करें। एक हाथ से कभी प्रणाम न करें।

जन्मप्रभृति यत्किञ्चित् चेतसा धर्ममाचरेत्।
सत्सर्वं विफलं ज्ञेयम् एकहस्ताभिवादनात्॥

मनुस्मृति- 2.117 (क्षेपक)

उपनीय गुरुः शिष्यं शिक्षयेच्छौचमादितः।
आचारमग्निकार्यञ्च सन्ध्योपासनमेव च॥

मनुस्मृति, 2. 69

गुरु शिष्य का उपनयन कर पहले शुद्धि= पवित्र रहने की शिक्षा दे। तब आचार-विचार हवन और सन्ध्यावन्दन का व्यावहारिक ज्ञान दें। यह आचार्य गुरु का कर्तव्य है।

वेद-वेदाङ्गादि के अध्यापक उपाध्याय कहलाते हैं। उन्हें शास्त्र का मर्म रहस्य ज्ञात

रहता है। वे विद्याग्रहण में तन्मय छात्र पर सयत्न उसे गूढ़ रहस्य ज्ञात कराते हैं। अतः उनकी शुश्रूषा में (सेवा करने में) शिष्य तत्पर रहे। नीतिकारों ने कहा है-

गुरुशुश्रूषया विद्या पुष्कलेन धनेन वा।
अथवा विद्यया विद्या चतुर्थी नैव विद्यते॥

गुरु की सेवा करने से या प्रयुर धन से या विद्या से (एक विद्या के पारंगत होने पर उसके द्वारा अन्य विद्या स्वयं पढ़कर या गुरु के साधारण निर्देश पर ही) विद्या प्राप्त होती है। इसमें चौथी रीति कोई नहीं है।

दीक्षागुरु विधिपूर्वक बीजमन्त्र देते हैं और उसकी साधना करने की रीति बताते हैं। इसके बाद शिष्य को सबकुछ स्वयं करना होता है।

यथा शिवस्तथा विद्या यथा विद्या तथा गुरुः।
गुरुणा दर्शिते तत्त्वे, तत्क्षणात् मन्मयो भवेत्॥

मन्त्रकौमुदी- देवनाथ ठाकुर, पृ. 31

भगवान् शिव और विद्यामें जैसे अभेद है वैसे ही विद्या और गुरु (विद्यावान्) में अभेद समढें। इसलिए गुरु के द्वारा दिखाये परमतत्त्व में शिष्य तन्मय हो जाये।

अध्ययनकाल में ही गुरु से ज्ञान लें

अध्ययनरत छात्र ही गुरु से ज्ञान लें, गुरु के द्वारा पढाये ग्रन्थ का ही अभ्यास करें। यदि कोई छात्र गुरु के निर्देश न पाकर भी पुस्तक से या अन्य व्यक्ति से पंक्ति लेकर अभ्यास कर लेता है तो शास्त्र में उसे चोर कहा गया है-

ब्रह्म यस्त्वननुज्ञातमधीयानादवाप्नुयात्।
स ब्रह्मस्तेयसंयुक्तो नरकं प्रतिपद्यते॥

मनुस्मृति- 2.116

उदाहरण के रूप में देखा जा सकता है कि समुद्र का जल स्वयं भरकर लाने पर खारा लगता है, किन्तु उसी जय को मेघ द्वारा प्राप्त करने पर मीठा लगता है। अतः शास्त्र को स्वयं न लेकर गुरु के द्वारा ही ग्रहण करना चाहिए। हाँ, विद्वान् होने पर स्वयं शास्त्रानुशीलन किया जा सकता है। गुरु से प्राप्त ज्ञान सच्चा और प्रामाणिक होता है।

गुरु कैसा हो-

गुरु का चयन शिष्य के अभिभावक करते हैं, किन्तु यदि शिष्य वयस्क हो तो स्वयं विवेक से गुरु बना सकता है। गुरु विद्या के सूक्ष्म तत्त्व को जाननेवाला, दर्शनशास्त्र में पक्का (उसका खण्डन न करनेवाला), देवता का उपासक, शान्त, निर्लोभ, शास्त्रीय विधि से उपासक, मन्त्र को सिद्ध करनेवाला, शास्त्रीय प्रयोग में निपुण तपस्वी, सत्यवादी- ऐसा गृहस्थ उपयुक्त होता है। ऐसे संन्यासी भी गुरु हो सकता है, या होता है, परन्तु गृहस्थ व्यक्ति अपने पुत्र के वैरागी होने के भय से उससे परहेज करते हैं- संसर्गजा दोषगुणा भवन्ति।

आदर्श इव विद्यानां न तु दर्शनदूषकः।
देवतोपासकः शान्तो विषयेष्वपि निःस्पृहः॥
पुरश्चरणकृत् सिद्धः सिद्धमन्त्रः प्रयोगवित्।
तपस्वी सत्यवादी च गृहस्थो गुरुरुच्यते॥

मन्त्रकौमुदी, पृष्ठ 24

गुरु के अनुकूल जिज्ञासु एकाग्रचित्त वाला, मननशील, श्रद्धावान्, एक-दो या तीन वर्षों तक गुरु के सान्निध्य में अवश्य रहनेवाला काम-क्रोधादि-रहित शिष्य होना चाहिए। (मन्त्रकौमुदी पृ. 25)

यदि शिष्य अज्ञानी हो तो गुरु सम्हाल लेते हैं और यदि गुरु ही अज्ञानी हो तो अन्ध कूप में गिरना निश्चित है-

जा का गुरु भी अन्धला चेला खरा निरन्ध।
अन्धा अन्धा ठेलिया दुन्यूं कूप पड़न्त॥

कबीरदास, कबीर-ग्रन्थावली, साखी

यदि उत्तम गुरु नहीं प्राप्त होता है तो शिक्षा अधूरी ही रह जाती है और वह शिष्य दर-दर ठोकर खाता है. अत: गुरु का चयन भलाभाँति कर लेनी चाहिए।

कबीर सतगुरु ना मिला, रही अधूरी सीख।
स्वांग जती का पहिरि करि घर घर माँगे भीख॥

गुरु का सम्मान

गुरु को देवता मानकर उनका सम्मान करें। प्रात:स्मरण में गुरु का स्मरण करें। जैसा कि कहा गया है-

प्रातः शिरसि शुक्लेऽब्जे त्रिनेत्रं द्विभुजं गुरुम्।
वराभययुतं शान्तं स्मरेत् तन्नामपूर्वकम्॥

यहाँ ज्ञानचक्षु के कारण गुरु को त्रिनेत्र कहा गया है। गुरु बनाकर फिर उनसे बैर रखनेवाला शिष्य नरक जाता है। गुरु यदि अल्पविद्यावाले भी हों तो भी शिष्य के वहीं गति हैं, उनका सम्मान अवश्य करें। शिव यदि रुष्ट हो जायें तो गुरु रक्षा करते हैं, किन्तु गुरु ही यदि रुष्ट हो जायें तो कोई नहीं बचा सकता है-

शिवे रुष्टे गुरुस्त्राता गुरौ रुष्टे न कश्चन।
अविद्यो वा सविद्यो वा गुरुरेव सदा गतिः॥

मन्त्रकौमुदी- पृष्ठ 31

गुरु की शय्या (बिस्तर) पर न चढ़ें, समान आसन पर गुरु के साथ न बैठें, उनके वस्त्र, खड़ाऊँ, वाहन, आसन एवं पगड़ी का व्यवहार न करें। गुरु एवं गुरुपत्नी को पिता एवं माता मानें। गुरु के धन का ग्रहण न करें।

गुरुस्वं नैव गृह्णीयात्

- कृत्यसारसमुच्चयपरिशिष्ट-
गुरु-माहात्म्य- पं. गङ्गाधर मिश्र।

एक अक्षर भी जिनसे प्राप्त किया हो, उनको न्यून न समझें-

एकाक्षरप्रदातारं गुरु यो नैव मन्यते।
श्वानयोनिशतं गत्वा चाण्डालत्वमवाप्नुयात्।

(कृत्यसारसमुच्चय, संपा. पं. गङ्गाधर मिश्र, बनारस, 1938, परिशिष्ट, पृ. 74)

गुरु में भक्ति रहनी चाहिए। गुरुभक्ति से हीन व्यक्ति की विद्या एवं तपस्या निष्फल हो जाती है। अत: गुरु का सम्मान करना चाहिए। आषाढी पूर्णिमा को गुरुपूर्मिमा के रूप में मनाया जाता है। इसी दिन व्यास- जयन्ती होती है। इस समय सभी प्रकार के गुरुओं के साथ बृहस्पति तथा व्यास की पूजा होती है। गुरु को वस्त्र आदि से सम्मानित किया जाता है।

गुरु से विद्या एवं उनके रहस्य शिष्य में संक्रमित होते हैं, जिससे दोनों का परस्पर अटूट सम्बन्ध हो जाता है। गुरु की महिमा दर्शाते हुए सन्त कबि कबीर ने लिखा है-

(कबीर-ग्रन्थावली, साखी, गुरुदेव, डा. रामसुन्दर दास)

सतगुरु की महिमा अनँत अनँत किया उपकार।
लोचन अनँत उघारिया, अनँत दिखावनहार॥

सद्गुरु की महिमा अनन्त है, उन्होंने मेरा अनन्त उपकार किया। साधना के अन्त में शिष्य की आँखों को उघाड़ दिया (उसपर से अज्ञान के पर्दे को हँटा दिया) और वे मुझे अनन्त (परमात्मा) को दिखानेवाले हैं।

गूँगा हुआ बाबला बहरा हुआ कान।
पाँउ थें पंगुल भया सतहुरु मारा बान॥

गुरु ने तत्त्वज्ञान शिक्षारूपी ऐसा बाण मारा कि जो शिष्य गूँगा था वह बाबड़ा (बोलनेवाला), जो बहरा था वह सुनने वाला तथा जो लँगड़ा था वह पैरवाला हो गया। ज्ञान की बात कहने सुनने और सत्संग में जाने लगा।

पीछे लागा जाइ था लोक-वेद के साथि।
आगे ते सतगुरु मिला, दीपक दीया हाथि॥

- (शेष पृ. 40 पर)

रामावत संगत : दिव्य गुरु हनुमानजी से दीक्षा का विधान

-आचार्य किशोर कुणाल

"जात-पाँत पूछे नहीं कोय, हरि को भजे सो हरि को होय।"

"जय सियाराम, जय हनुमान, संकटमोचन कृपानिधान॥"

"सबलोग ईश्वर के चरणों में शरणागति के सदैव अधिकारी हैं, चाहे वे सबल या निर्बल हों। इसके लिए न तो कुल की, न बल की, न काल की और न ही शुद्धता की अपेक्षा है।"- जगद्गुरु रामानन्दाचार्य

नमोऽस्तु रामाय सलक्ष्मणाय
देव्यै च तस्यै जनकात्मजायै।
नमोऽस्तु रुद्रेन्द्रयमानिलेभ्यो
नमोऽस्तु चन्द्रार्कमरुद्गणेभ्यः॥

(वाल्मीकि रामायण, सुन्दरकाण्ड, 13.59)

1. महावीर मन्दिर की ओर से रामावत संगत की स्थापना की जा रही है। रामावत संगत युग-प्रर्वतक सन्त रामानन्दाचार्य के सिद्धान्तों का अनुसरण सामान्यतः करेगी। रामानन्दाचार्य द्वारा स्थापित सम्प्रदाय का नाम है रामावत सम्प्रदाय और इस समुदाय के भक्त दो प्रकार के हैं- साधु एवं गृहस्थ। साधु बैरागी कहलाते हैं और आज भारत में ऐसे विरक्त सन्तों की संख्या सर्वाधिक होगी। उनके अपने नियम एवं अनुशासन हैं। रामावत संगत उनके प्रति अगाध श्रद्धा रखेगी तथा उनके नियम एवं अनुशासन में हस्तक्षेप नहीं

करेगी।

2. यह रामावत संगत गृहस्थों के लिए है। इसका मूल सिद्धान्त होगा "जात-पाँत पूछ नहीं कोय। हरि को भजै सो हरि को होय" रामानन्दाचार्य द्वारा विरचित 'वैष्णव-मताब्ज-भास्कर' में निरूपित सिद्धान्तों के यथासाध्य अनुसरण का प्रयास संगत करेगी। यह ग्रन्थ पिछली सहस्राब्दी में संस्कृत में विरचित सबसे बड़ा क्रान्तिकारी ग्रन्थ है।

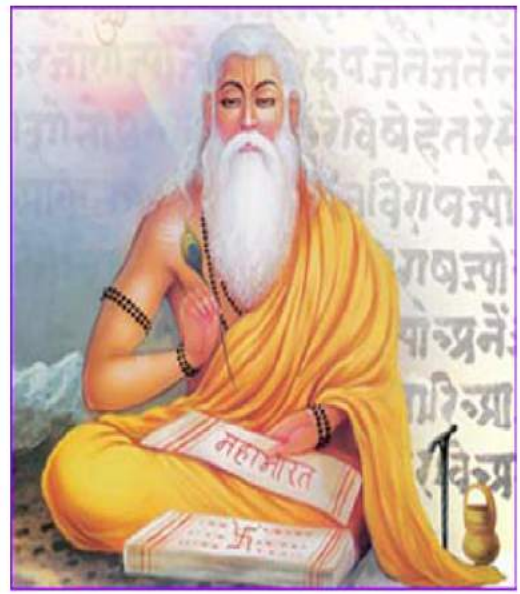

सर्वे प्रपत्तेरधिकारिणः सदा
शक्ता अशक्ता पदयोर्जगत्प्रभोः।
अपेक्ष्यते तत्र कुलं बलं च नो
न चापि कालो न च शुद्धतापि॥

(वैष्णवमताब्जभास्कर-4:42)

अर्थात् सबलोग ईश्वर के चरणों में शरणागति के सदैव अधिकारी हैं, चाहे वे सबल या निर्बल हों। इसके लिए न तो कुल की, न बल की, न काल की और न ही शुद्धता की अपेक्षा है। महर्षि वाल्मीकि सामाजिक समता का इससे अधिक बुलन्द उद्घोष किसी अन्य धर्माचार्य ने नहीं किया। अतः रामावत संगत में भी सामाजिक समता पर सर्वाधिक बल दिया जायेगा।

3. इस रामावत संगत में यद्यपि सभी प्रमुख देवताओं की पूजा होगी; किन्तु ध्येय देव के रूप में सीताजी, रामजी एवं हनुमानजी होंगे। हनुमानजी को रुद्रावतार मानने के कारण शिव, पार्वती और गणेश की भी पूजा श्रद्धापूर्वक की जायेगी। राम विष्णु भगवान् के अवतार हैं; अतः विष्णु भगवान् और उनके सभी अवतारों के प्रति अतिशय श्रद्धाभाव रखते हुए उनकी भी पूजा होगी। श्रीराम सूर्यवंशी हैं; अतः सूर्य की भी पूजा पूरी श्रद्धा के साथ होगी।

4. इस रामावत-संगत में वेद, उपनिषद् से लेकर भागवत एवं अन्य पुराणों का नियमित अनुशीलन होगा; किन्तु गेय ग्रन्थ के रूप में रामायण (वाल्मीकि, अध्यात्म एवं रामचरितमानस) एवं गीता को सर्वोपरि स्थान मिलेगा। **'जय सियाराम जय हनुमान, संकटमोचन कृपानिध**

ान' प्रमुख गेय पद होगा।

5. ऋषियों-मुनियों एवं साधु-सन्तों में सबके प्रति समान सम्मान का भाव रखते हुए महर्षि वाल्मीकि, रामानन्दाचार्य, उनके शिष्य सन्त कबीरदास एवं सन्त रैदास तथा गोस्वामी तुलसीदास के साहित्य का विशेष रूप से पठन-पाठन किया जायेगा।

6. ज्ञान, कर्म एवं भक्ति के मार्गों में आस्था रखते हुए रामावत संगत भक्ति की भागीरथी सर्वत्र प्रवाहित करने की चेष्टा करेगी। भगवान् श्रीराम की वाणी- 'मानहुँ एक भगति के नाता' एवं श्रीकृष्ण के उपदेश - 'न मे भक्तः प्रणश्यति'के सिद्धान्त को घर-घर में प्रचारित करने का प्रयास किया जायेगा। यह पन्थ भगवान् और भक्त के बीच की दीवार को दूर करने की चेष्टा करेगा।

7. रामावत संगत का दर्शन होगा प्रपत्तिवाद। भगवान् की शरणागति को प्रपत्ति कहते हैं। प्रपत्तिवाद का अर्थ है- भगवान् की शरण में जाने से मंगल होने की अटूट आस्था। भगवान् श्रीराम ने वाल्मीकि-रामायण में कहा है

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम।

(वा.रा. : 6.18.33)

8. परम्परागत धर्माचार्यों के प्रति पूरी प्रतिष्ठा प्रदर्शित करते हुए यह सम्प्रदाय नकली बाबाओं के पाखण्ड एवं परिग्रह का विरोध करेगा। उनके परोपदेश के पीछे पापाचरण को प्रदर्शित करते हुए उनसे सावधान एवं दूर रहने का आह्वान इस रामावत संगत द्वारा किया जायेगा।

9. रामावत संगत का प्रचार-प्रसार गाँव-शहर सर्वत्र किया जायेगा। इस संगत के सदस्यों के लिए सप्ताह में एक दिन गाँव-कस्बे के किसी मन्दिर में बिना भेदभाव के सामूहिक रूप से

जुटकर मन्दिर में स्थापित देवता की आराधना तथा अर्चन करना, हनुमान चालीसा, सुन्दरकाण्ड का पाठ करना होगा। बड़े शहर में रहनेवाले सदस्य महीने में कम-से-कम एक बार इसमें अवश्य शामिल होगें। साल में रामनवमी, जन्माष्टमी, शिवरात्रि एवं किसी मुख्य पर्व पर गाँव या कस्बे के सभी लोग बिना भेदभाव के एक पंक्ति में बैठकर साथ भोजन करेंगे। सप्ताह में या महीने में एक दिन संगत एवं वर्ष में एक दिन पंगत का आयोजन किया जायेगा। समाज के गरीब एवं उपेक्षित वर्गों को विशेष रूप से जोड़ने का अभियान चलाया जायेगा। समाज में व्याप्त जात-पाँत, छुआछूत के कोढ़ के उन्मूलन में हर सदस्य सक्रिय भूमिका निभायेगा।

10. इस संगत के सदस्यों के लिए मांसाहार, मद्यपान, परस्त्रीगमन एवं परद्रव्यहरण का निषेध रहेगा। सदस्य न किसी से रिश्वत लेंगे और न किसी को रिश्वत देंगे। हर सदस्य अपने एवं परिवार से ऊपर उठकर समाज एवं राष्ट्र के हित में कार्य करेगा। देशभक्ति रामावत संगत की अटूट शक्ति होगी।

11. "परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनम्" के आर्ष-वाक्य का पालन करते हुए हर सदस्य परोपकार को प्रवृत्त होगा एवं परपीड़न से बचेगा। हर दिन कम-से-कम एक नेक कार्य करने का प्रयास हर सदस्य करेगा। आज धर्म को परोपकार से जोड़ना युगधर्म है। इसकी उपेक्षा से धर्म का उपहास ध्वनित होगा।

12. भगवान् को तुलसी या वैजयन्ती की माला बहुत प्रिय है अतः भक्तों को इसे धारण करना चाहिए। विकल्प में रुद्राक्ष की माला का भी धारण किया जा सकता है। ऊर्ध्वपुण्ड्र या ललाट पर सिन्दूरी लाल टीका (गोलाकार में) करना चाहिए। स्त्रियाँ मंगलसूत्र जैसे मांगलिक हार पहनेंगी; किन्तु स्त्री या पुरुष अनावश्यक आडम्बर या धन का प्रदर्शन आभूषणों से नहीं करेंगे।

13. स्त्री या पुरुष एक दूसरे से मिलते समय राम-राम, सीताराम, हरि ॐ जैसे शब्दों से सम्बोध करेंगे और हाथ मिलाने की जगह करबद्ध रूप से प्रणाम करेंगें।।

14. रामावत संगत में मन्त्र-दीक्षा की अनूठी परम्परा होगी। जिस भक्त को जिस देवता के मन्त्र से दीक्षित होना है, उस देवता के कुछ मन्त्र समान रूप से लिखकर रखे जायेंगे। रात्रि में

आरती के बाद भक्त द्वारा गीता के निम्नलिखित श्लोक द्वारा उसका संकल्प कराया जायेगा

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः
पृच्छामि त्वां धर्मसम्मूढचेताः।
यच्छ्रेयः स्यानिश्चितं ब्रूहि तन्मे
शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्॥ (2.7)

"हे भगवन्, मेरे मन में ऐसी किंकर्तव्य-विमूढ़ता समा गयी है कि मेरी समझ में नहीं आ रहा है कि मुझे क्या करना चाहिए। इसलिए ठीक ठीक सोच-विचारकर आप ही मुझे समझा दीजिए कि इस दुबिधा में क्या क्रान्तदर्शी कबीर करने से मेरा उपकार होगा; आप ही मुझे उपदेश करें; क्योंकि मैं आपका शिष्य होकर आपकी शरण में आ पहुँचा हूँ।"

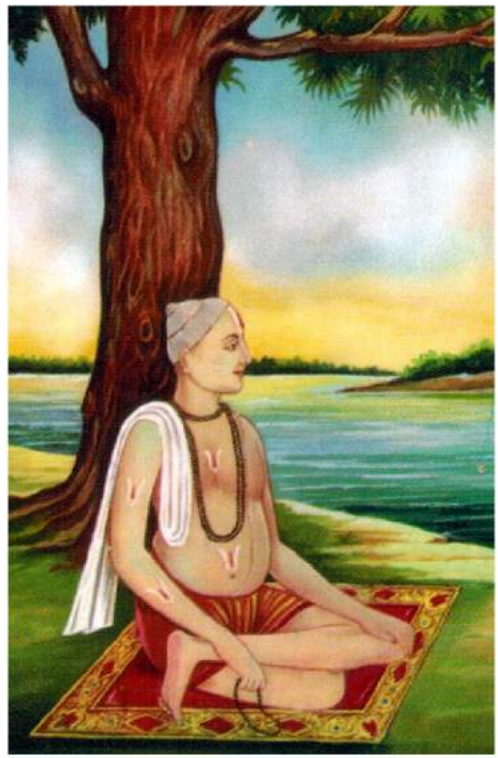

प्रातःकालीन आरती के बाद उस भक्त से मन्त्र लिखे पुर्षों में से कोई एक पुर्जा निकालने के लिए कहा जायेगा। भक्त जो पुर्जा निकालेगा, वही उस भक्त का मन्त्र होगा। मन्दिर के पण्डित उस मन्त्र का अर्थ और प्रसंग बतला देंगे, बाद में उसके जप की विधि भी। वही उसकी मन्त्र-दीक्षा होगी। **इस विधि में हनुमानजी परम-गुरु होंगे और वह मन्त्र उन्हीं के द्वारा प्रदत्त माना जायेगा। भक्त और भगवान् के बीच कोई अन्य नहीं होगा।**

15. महावीर मन्दिर के लाखों भक्त है; किन्तु उनकी विशद जानकारी महावीर मन्दिर को नहीं है और न ही उन भक्तों का सीधा संवाद या सम्पर्क महावीर मन्दिर से है। रामावत संगत की स्थापना से यह खाई मिटेगी। महावीर मन्दिर के सन्देश-वाहक के रूप में रामावत संगत द्वारा दायित्व निभाया जायेगा तथा महावीर मन्दिर की योजनाओं को मूर्त रूप देने में भी संगत की सक्रिय भूमिका होगी। महावीर मन्दिर न्यास के तत्वावधान में निर्माणाधीन विश्व का विशालतम मन्दिर- विराट् रामायण मन्दिर के निर्माण में भी संगत का बहुमूल्य योगदान होगा।

16. रामावत संगत के सदस्य संसार के सबसे विशाल मन्दिर- विराट् रामायण मन्दिर के निर्माण में सक्रिय सहयोग करेंगे। मन्दिर या इसके अस्पतालों के निर्माण में धन-कुबेरों से नगण्य सहयोग मिला है। निम्न या मध्यम आयवर्ग के भक्तों की सहायता से ही महावीर-मन्दिर न्यास इतना परोपकारी कार्य कर सका है। महावीर मन्दिर के निर्माण में लाखों भक्तों ने कार सेवा की थी और मन्दिर निर्माण में अपनी साझीदारी समझी थी।

उसी प्रकार विश्व के विशालतम देवालय के निर्माण में भी महावीर मन्दिर लाखों भक्तों को जोड़ना चाहता है। इस विशालतम मन्दिर के निर्माण के लिए भक्तों से अनुरोध है कि 7 हजार रुपये प्रति वर्गफुट के हिसाब से भक्त कुछ वर्गफुट निर्माण का योगदान करे। कोई एक वर्गफुट, कोई तीन, कोई पाँच कोई दस, कोई पन्द्रह, कोई बीस, कोई पचास, कोई सौ और कोई हजार। जो व्यक्ति जितने वर्गफुट का योगदान करेगा, उसे उक्त योगदान के लिये मन्दिर न्यास की ओर से एक सुन्दर प्रमाण-पत्र दिया जायेगा जिसपर विराट् रामायण मन्दिर का चित्र और उसके योगदान का उल्लेख होगा। वह उसे अपने घर या संचिका में रखकर अपने मित्रों, रिश्तेदारों एवं दूसरों को गर्व से दिखला सकेगा। पन्द्रह वर्गफुट से अधिक योगदान करनेवालों के नाम मन्दिर प्रांगण में निर्मित धर्मस्तम्भ पर लिखे जायेंगे। इससे अधिक का योगदान करनेवालों के लिए उत्तरोत्तर अधिक महत्त्वपूर्ण स्थानों पर नाम उत्कीर्ण किये जायेंगे।

17. विराट् रामायण मन्दिर के निर्माण में भक्तों का योगदान पारदर्शी बनाने के लिए बैंक

के पर्यवेक्षण में सिक्यूरिटी-प्रेस से महावीर मन्दिर न्यास ने कूपन छपवाया है जो बैंक की अभिरक्षा में रहेगा। बैंक से मन्दिर-न्यास इस कूपन को खरीदने के बाद उसका विक्रय करेगा और प्राप्त राशि को बैंक में जमा करेगा। भक्त स्वतः भी अपनी सहयोग-राशि बैंक में विराट् रामायण मन्दिर के खाते में जमा कर सकते हैं। राशि जमा करने या कूपन खरीदने के बाद प्रमाण-पत्र लेना न भूलें। यह धरोहर के रूप में रहेगा और पीढ़ी-दर-पीढ़ी तक वंशजों को परोपकार के लिए प्रेरित करेगा।

18. रामावत संगत से जुड़ने के लिए कोई शुल्क नहीं है। भक्ति के पथ पर चलते हुए सात्त्विक जीवन-यापन, समदृष्टि और परोपकार करते रहने का संकल्प-पत्र भरना ही दीक्षा-शुल्क है। आपको सिर्फ इस http://mahavirmandirpatna.org/Ramavat-sangat.html पर क्लिक करना होगा। मन्दिर से सम्पुष्टि मिलते ही आप इसके सदस्य बन जायेंगे।

इस रामावत संगत की स्थापना के अवसर पर दिनांक 11 अक्टूबर, 2014 को पाँच सौ वर्षों के बाद रामानन्दाचार्य एवं उनके शिष्य सन्त कबीर, सन्त रविदास, भक्त सेन, भक्त धन्ना जाट आदि द्वारा स्थापित सभी पीठों के आचार्य उपस्थित होकर रामानन्दाचार्यजी के समतामूलक सिद्धान्तों के आधार पर समाज के सुदृढ़ करने का प्रयास करेंगे। रामानन्दीय विद्वान् विरक्त महात्मा अनन्तदासजी के शब्दों में :

दास अनन्त भगति करै, जाति पांति कुल षोइ।
ऊंच-नीच हरि नां गिनै, भगति कीयां बसि होई॥

रामावत-संगत का सदस्य बनकर इसके सिद्धान्तों का पालन अपनी दिनचर्या में करें तथा अपने पड़ोस, गाँव, समाज में इसका प्रचार-प्रसार कीर्तन, भजन, प्रवचन एवं अपने आदर्श जीवन-यापन से करें। साथ में, विराट् रामायण मन्दिर की गौरवगाथा का बखान भी सर्वत्र करें कि महावीर मन्दिर न्यास के तत्त्वावधान में निर्माणाधीन यह मन्दिर लम्बाई (2600 फीट), चौड़ाई (1400 फीट) और ऊँचाई (379 फीट) में संसार का सबसे विशाल मन्दिर बनेगा। इस मन्दिर में 72 फीट की ऊँचाई पर 20 हजार भक्त एक साथ सीताजी, लव-कुश एवं वाल्मीकि का दर्शन, पूजन, अर्चन कर सकते हैं। ऐसी भव्यता है इस विराट् मन्दिर की, जिसका निर्माण मन्दराचल की तरह भारी है और यह अमित व्यय-साध्य तथा श्रम-साध्य है। इसे प्रारम्भ करने में पहले 'बाल मराल कि मन्दर लेही सोचकर डर लगता था; किन्तु रघुनाथजी सर्वसमर्थ हैं, यह समझकर इस कार्य को प्रारम्भ किया गया है

गई बहोर गरीब नेवाजू। सरल सबल साहिब रघुराजू॥

महावीर मन्दिर की ओर से
न्यास के सचिव आयार्य किशोर कुणाल द्वारा प्रसारित

***

शिष्यस्तेऽहम् : गीता के परमगुरु श्रीकृष्ण

-डा. सुदर्शन श्रीनिवास शाण्डिल्य

गुरु के भी गुरु परम गुरु ईश्वर की अवधारणा हम सभी सम्प्रदायों में पाते हैं। रामोपासना की शाखा में मुक्तिकोपनिषद् के उपदेष्टा हनुमान् परमगुरु हैं। इसी प्रकार शिव, सूर्य, गणेश, कृष्ण ये सब देव विभिन्न स्थानों पर उपदेशक गुरु हैं, जिनका उपदेश ईश्वर की साक्षात् वाणी है। ऐसी ही ईश्वर की वाणी श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान् श्रीकृष्ण के गुरुत्व पर प्रस्तुत है एक गम्भीर आलेख।

गीताज्ञानप्रदातारं भक्तकल्याणकारकम्।
सर्वज्ञं व्यापकं नित्यं कृष्णं नौमि विमुक्तिदम्॥

प्रारब्ध परिधि विधि संचरण में जीव अस्तित्व क्षय से ही स्वजीवन संरक्षण संवर्द्धन के लिए सदैव अग्रसर रहता है। चराचर जगत् में स्थूल-सूक्ष्मस्थ से संरक्षण-संघर्षशीलता व्याप्त है। समयानुकूल प्राप्त शक्ति के अनुसार से विभिन्नता में अग्रसर है। जीवधारियों में मानव सामर्थ्य, साधन एवं बोध से सम्पन्न प्राणी है। यह शक्ति मनुष्येतर प्राणियों में नहीं है। अतः उन्हें आत्मा एवं परमात्मा के ज्ञान की आवश्यकता ही नहीं होती है। आवश्यकता ही तो यत्न आरम्भ करने के लिए के लिए अग्रसर करती है। अतः प्रत्येक मनुष्य स्वभाव से प्राप्त ज्ञान के कारण आवश्यकता निर्धारित कर उसकी प्राप्ति के लिए यत्नशील होता है। यहाँ पर विचारणीय है कि मानव यदि प्रारम्भिक स्थिति में विवेकसम्मत एवं शाश्वत श्रेयः की प्राप्ति के लिए यत्नशील है तो उसका जीवन सार्थक है। अन्यथा उसका अस्तित्व ही सर्वथा व्यर्थ है। उसका होना या न होना एक समान है। जैसे गीता के तृतीयाध्याय के 16वाँ श्लोक में कहा गया है

एवं प्रवर्तितं चक्रं नानुवर्तयतीह यः।
अघायुरिन्द्रियारामो मोघं पार्थ स जीवति॥

भगवान् कृष्ण कहते हैं- हे पार्थ, जो पुरुष इस संसार में प्रवर्तित सृष्टिचक्र के अनुकूल कर्तव्यपालन नहीं करता है; केवल इन्द्रियसुख के लिए भोग का ज्ञान रखनेवाले ऐसे मनुष्य का जीवन सर्वथा व्यर्थ है तथा वह जरायु है, अर्थात् उसकी सम्पूर्ण आयु पापमय है।

आगे गीता के तीसरे अध्याय के 14-15 श्लोक में सृष्टिचक्र की व्याख्या इन शब्दों में की गयी है-

अन्नाद् भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसम्भवः।
यज्ञाद् भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्भवः॥14॥
कर्मब्रह्मोद्भवं विद्धि ब्रह्माक्षर समुद्भवम्।
तस्मात् सर्वगतं ब्रह्म नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम्॥15॥

अर्थात् सम्पूर्ण प्राणी अन्न से उत्पन्न होते हैं। अन्न की उत्पत्ति वृष्टि से होती है। वृष्टि

* *अवकाशप्राप्त व्याकरणाध्यापक, व्रजभूषण संस्कृत महाविद्यालय, गया। वर्तमान आवास- ज्योतिषभवन, शिवनगर कालोनी, मार्गसंख्या 10, बेऊर जेल के पीछे, पटना।*

यज्ञ से होती है तथा यज्ञ शास्त्रविहित कर्मों से उत्पन्न होता है। विहित कर्मकलाप का यथार्थप्रतिपादक वेद है। उस वेद का प्रतिपादक अविनाशी परमात्मा है। अतः इससे सिद्ध होता है कि सर्वव्यापी परम अक्षर परमात्मा सदा ही यज्ञ में प्रतिष्ठित है। उस परमात्म सम्बन्ध से मानव जीवन सर्वथा श्रेष्ठ सार्थक होता है। यही सृष्टिचक्र है।

अन्नादि सृष्टिचक्र में जन्म से ही मनुष्य आहार-निद्रा, भय मैथुन आदि कर्मों का ज्ञाता जन्म से ही रहता है। वस्तुतः मनुष्य अपने अंदर से पशुता का कुशल पालन करनेवाला तथा एक दूसरे के बीच फैलानेवाला होता है। किन्तु जब मनुष्य में बुद्धि की अधिकता होती है तब वह अनेक प्रकार के उपायों का सर्जन कर उसका आश्रय लेकर पाशविक प्रवृत्ति को छोड़ देना चाहता है। स्वाभाविक रूप से इस पाशविक प्रवृत्ति का त्याग असंभव है। कोई मनुष्य यदि विना उचित साधन अपनाये यह करना चाहेगा तो उसका परिणाम अति विनाशकारी होगा। जिस प्रकार नदी को तटबंधों से घेरने का दुष्परिणाम भयंकर होता है, उसी प्रकार पाशविक प्रवृत्ति को घटाये विना उसका दमन करने के परिणाम एवं कुप्रभाव से आज विश्व संत्रस्त है। भोग की वेगवती वासना के समक्ष मानव सामर्थ्यहीन विवश, निःसहाय बनकर इन्द्रियों का दास हो जाता है। अतः यह आवश्यक है कि भोगवती वासना की प्रबलता को कम किया जाये, न कि उसे किसी बंधन में बाँध कर दमित करने का प्रयास किया जाये। भोगवती वासना का व्यावहारिक चित्रण गीता के तृतीय अध्याय के 67वें श्लोक में है

इन्द्रियाणां हि चरतां यन्मनोनु विधीयते।
तदस्य हरति प्रज्ञां वायुर्नावमिवाम्भसि॥

विषयों में विचरण करती हुई पंच ज्ञानेन्द्रियों में किसी एक भी इन्द्रिय का मन से सम्बन्ध हो जाता है तो वह एक ही इन्द्रियपुरुष की बुद्धि को हर लेती है। जैसे जल में चलनेवाली नाव को वायु हर लेती है अर्थात् अपने वेगानुकूल चलाती है।

मनुष्य के सभी गुण ससीम हैं। उनके बल, बुद्धि और सामर्थ्य की भी सीमा है। इसी सीमा पर पराजित होकर जब अपनी रक्षा के लिए वह मानव सर्वथा सक्षम, और सामर्थ्यशक्ति आश्रय की आकांक्षा तीव्रता के साथ करता है तब यही तीव्र आकांक्षा ही गुरुतत्त्व को उत्पन्न करता है उसकी स्थापना करता है।

मनुष्य के सभी गुण ससीम हैं। उनके बल, बुद्धि और सामर्थ्य की भी सीमा है। इसी सीमा पर पराजित होकर जब अपनी रक्षा के लिए वह मानव सर्वथा सक्षम, और सामर्थ्यशक्ति आश्रय की आकांक्षा तीव्रता के साथ करता है तब यही तीव्र आकांक्षा ही गुरुतत्त्व को उत्पन्न करता है उसकी स्थापना करता है।

इस गुरुतत्त्व की अद्‌भुत व्याख्या श्रीमद्‌भगवद्‌गीता में हम देखते हैं। करुणा के समुद्र श्रीकृष्ण के साथ सर्वथा सर्वदा सख्यभाव से रहनेवाला अर्जुन महाभारत के परिक्षेत्र में मोहग्रस्त होकर अवसादग्रस्त हो जाता है। विभिन्न

तर्कों-वितर्कों का आश्रय लेकर वह अपने निर्णय को परिपुष्ट भी करता है। अर्जुन के द्वारा जो तर्क दिये गये हैं, वे मानवमात्र के द्वारा समान रूप से दिये जानेवाले तर्क हैं। अर्जुन ने जो किया उसे मानवमात्र करता है। लौकिक एवं पारलौकिक प्रतिकूल परिस्थिति रूपी दु:खपरिधि का कारण निर्णय मूलक ही तो है। यदि स्थितप्रज्ञता की स्थिति में प्रत्येक कार्य का संधारक निर्णय समुचित हो, तो प्रेय-श्रेय की प्राप्ति में प्रत्येक मानव सफल होगा। पर अर्जुन का निर्णय जगद्गुरु सर्वज्ञ कृष्ण के ज्ञान-प्रकाश के समक्ष तिरोहित हो जाता है। क्या करें, क्या न करें, यही द्वन्द्व मानव की असफलता का कारण होता है। लेकिन अर्जुन मोहग्रस्तता की स्थिति में भी द्वन्द्व में नहीं है। वह प्रथमत: युद्ध से विमुख है किन्तु अनिवार्य युद्ध को सम्मुख देखकर कुरुक्षेत्र में अर्जुन कर्तव्य का निर्णय करने के लिए कृपा और ज्ञान से ओतप्रोत परमगुरुसत्ता का आश्रय लेता है। रोम-प्रतिरोम से स्वयं निर्णीत एवं स्वीकृत शिष्यता ही श्रीकृष्ण के गुरुत्व का द्योतक एवं उन्मेषक है। कर्तव्य के निर्णय के लिए अर्जुन कोमलता की पराकाष्ठा में हृदय से चीत्कार करता हुआ श्रीकृष्ण से प्रार्थना कर उन्हीं का शरणापन्न हो जाता है।

कार्पण्यदोषोपहत: स्वभाव:
पृच्छामित्वां धर्मसंमूढचेता:।
यच्छ्रेय: स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे
शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्॥

हे प्रभो मेरी बुद्धि मारी गयी है, मैं क्या करूँ क्या न करूँ यह सोचने की शक्ति मुझमें अब नहीं रही। धर्म क्या है और अधर्म क्या है इसका निर्णय नहीं कर पाने की स्थिति में में चेतनाहीन हो चुका हूँ, मोहितचित्त हो चुका हूँ। मोह कृत्याकृत्यविवेक का नाशक होता है। हे दया के सागर, उस क्षण हृदय से मैं आपका शिष्य हो गया हूँ। अत: जिस कर्तव्य पालन से मेरा श्रेय अर्थात् आत्मकल्याण सुनिश्चित हो, वह मुझे बतायें। इतना ही नहीं मैं आपकी शरण में हूँ। अर्थात् आपके अतिरिक्त मेरा कोई अवलम्बन नहीं है। अत: इस निराश्रित अनाथ को सनाथित करें।

अर्जुन की इसी एक उक्ति में गुरुत्व एवं शिष्यत्व दोनों परिभाषित हैं।

इसकी व्याख्या करने के लिए हमें देखना होगा कि किसी भी कार्य की सिद्धि के लिए तीन आवश्यक तत्त्व हैं- आस्था, अवस्था एवं व्यवस्था। यहाँ गम्भीरतापूर्वक विचारणीय है कि ज्ञानसंचार के अनुकूल व्यवस्था सर्वथा अस्तित्वहीन है, पर परिस्थिति-विशेष के कारण ज्ञानप्राप्ति की आस्था जागृत होती है। मन की वह अवस्था जिसमें ज्ञान का ग्रहण सम्भव हो, सभी प्रकार से सद्य: प्रस्फुटित हो जाती है। युद्ध की व्यवस्था भी ज्ञानलाभ में परिवर्तित हो जाती है। कुरुक्षेत्र के आने के पूर्व पूर्णरूप से तन-मन-आत्मा इन तीन आवरणों से ढँकी परिधि में युद्ध की मनोदशा थी। बहुपरीक्षित, बहुत दिनों से शिक्षित, बहुप्रभाव-साध्ययुक्त, परिवेश व्यापृत में ज्ञानसंचरण-संभावन दूर-दूर तक संभव नहीं है। परिकल्पना भी नहीं है। पर, इसके विपरीत निर्विवाद शाश्वत हितकारी ज्ञान का संचरण हुआ, जो गीता के रूप में पुण्यवती हृत्प्रतिष्ठित है।

सौर, गाणपत्य शाक्त, वैष्णव तथा, शैव सम्प्रदायों में विहितोपचार से शिष्य बनाने की अपनी अपनी परम्परा है। उनका यहाँ कोई सम्बन्ध नहीं है। तथापि गुरुत्व-शिष्यत्व का अद्‌भुत अनुपम समन्वय यहाँ हुआ है। वस्तुतः गीता शाश्वत हितकारी ज्ञान का अक्षयकोष है। आम व्यवस्था पर ही सर्वाधिक बल दिया जा रहा है। पर आस्था की अवस्था के अभाव में विद्या अविद्या बन रही है। गुरुत्व-शिष्यत्व स्वरूप उत्तरोत्तर अधोगामी हो रहा है। वर्चस्व स्थापन, जनसम्पर्क संवर्द्धन स्वस्थापन मानधन ही यदि गुरुत्व का आधार है तो ऐसा गुरुत्व सर्वदा-सर्वथा विनाशकारी है। यदि द्वन्द्वभाव या दुःखभाव की तीव्राकांक्षा में देवतत्त्व के विभिन्न रूपों में किसी भी रूप का आश्रय लेकर सच्चे हृदय से प्रार्थना करेंगे तो निश्चित है सर्वथा दुःखशामक अज्ञाननाशक ज्ञान गुरुतत्त्व का संचार होगा। वैसे भी इस सृष्टि का कारण परमपिता परमात्मा हैं फलतः सृष्टि से इनका आत्मिक सम्बन्ध है। जिससे इसके संरक्षम-संवर्द्धन में सर्वदैव वे सचेष्ट यत्नशील हैं। अतः सृष्टिकल्याण के लिए उनका ज्ञान-संचार सदैव अग्रसर है। बस आवश्यकता है आपके उन्मेष का, आस्था, अवस्था की उसका हितकारी संकेत प्रतिक्षण भावसंचरण, दुर्घटना घटना, स्वप्नादि मनोदशा प्रभृति भावसाधनों से अग्रसर है, पर मनुष्य इन्द्रियस्थूलोद्वेग या प्रमत्तावस्थावस्था में उनके संकेत को समझ नहीं पाता है। मेरा भी अनुभव है, उनका संकेत अतिसूक्ष्म होता है। वे हाथ पकड़कर काम नहीं कराते हैं। तब तो मनुष्य-मनुष्य पुरुषार्थविहीन हो जायेगा। अतः संरक्षण, संवर्द्धन, तथा सुनिश्चित श्रेय परिधि में परमात्मा का ही जगद्‌गुरुत्व ध्रुव, शाश्वत, तथा अक्षुण्ण है। इससे भिन्न पार्थिव गुरु का महिमामण्डन भ्रम मात्र है, सर्वथा चिन्तनीय सत्य है कि पार्थिव गुरु की महिमा का यथार्थ से कोई सम्बन्ध नहीं है।

एक विशेष ध्यातव्य, द्रष्टव्य, मननीय, चिन्तनीय अनिवार्य ज्ञान विना यह है कि जब से भगवान् कृष्ण के द्वारा सर्वथा व्यवहार्य, परमार्थसरण से गुरुत्व की मौन स्वीकृति मिली, तबसे उन्होंने आगे कभी भी अर्जुन को शिष्य शब्द से संबोधित नहीं किया। अपितु गुण, क्रिया-सम्बन्ध परिधि में आबद्ध शब्दों का ही प्रयोग किया है। जैसे- परन्तप, गुड़ाकेश, कौन्तेय, महाबाहो इत्यादि । इसलिए गुरु गुरुत्व का बाधक न हो जाये गुरुत्व-शिष्यत्व का सर्वता निर्भय, निःसंकोच, निसर्ग समन्वय ही गुरुत्वश्रेयप्रतिपादक होगा। व्यावहारिक जगत् में सारथि बनकर तदनुकूल अपेक्षित व्यवहारों का सहज सम्पादन किया। गुरुत्व तो सदा सर्वदा निरपेक्ष, स्वतन्त्र निराश्रित श्रेयनिश्चयात्मक बुद्धि-वारिधि निमज्जित होता है। फलतः उनका चिन्तन सर्वत्र परिस्थित-निरपेक्ष अटल एवं अक्षुण्ण होता है।

जैसे, गीता के द्वितीयाध्याय में

व्यवसायात्मिकाबुद्धिरेकेह कुरुनन्दन।
दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषुविगतस्पृहः॥
वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते।
यः सर्वथाभिस्नेहस्तत् प्राप्य शुभाशुभम्।
नाभिनन्दति नो द्वेष्टि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता॥

इस गुणसंचार की नित्यता में गुरुत्व ध्रुव अधिष्ठित रहता है। जिसका पूर्ण परिचय करुणाकूपार कृष्ण के उदात्त व्यक्तित्व से व्यवहारसिद्ध है। उच्चतम-निम्नतम भावपरिधि में गुरुत्व-शिष्यत्व का संचरण तो सर्वथापशुभाव है।

यथा संत वचन में भी कहा गया है;

पारस अरु संत में बहुत अंतरो जान।
वह लोहा सोना करै यह करै आप समान॥

पूर्ण गुरुत्व के सान्निध्यसंचार में सर्वत्र गुरुत्व ही अधिष्ठित होता है। अन्यथा गुरुत्व के अध्यास में सांनिध्य भी लघुता का ही संचारक होकर कलङ्कित घातक होता है।

यह भी ध्यातव्य है कि गुरुत्व सदा संचारपरिधिमें ही हितकारी तथा शुभस्वरूप होगा। प्रेय (सांसारिकता), परिधि में गुरुत्व अधोगामी क्षरण-शील तथा घातक, विनाशक होगा। इसी तरह श्रेयाकांक्षाभिलाषिता में शिष्यत्व यथार्थता में अग्रसर होकर सार्थक होगा।

यथा- अर्जुन का वचन है- **यच्छ्रेयःस्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे**। यदि श्रेय परिधि में प्रायोजित शिष्यत्व का संचरण होगा तो वहीं पर शोषण, दमन, अधोगामिता का संचार होगा। अतः भौतिक लाभ परिधि में प्रायोजित गुरुत्व-शिष्यत्व उभयविध सर्वथा हानिकारक है। तीव्रत्राणाकांक्षा श्रेय, उन्मेष, आस्था, अवस्था के अंतःकरण निःसृत सुभावना से स्वसंचरित गुरुता तथा स्वस्वीकृत शिष्यता से ही मानवकल्याण होगा तथा मानवता सुरक्षित होगी।

आचार्य दूसरों के उज्जीवन का उत्तरदायी होता है। अतः शिष्य की दक्षिणा पर ध्यान लगानेवाला आचार्यत्व के व्यापारी को आचार्य गुरु बनने का कोई अधिकार नहीं है। श्रुतिवचन के अनुसार

तस्मै स विद्वानुपसन्नाय सम्यक् प्रशान्तचित्ताय शमान्विताय।
येनाक्षरं पुरुषं वेद सत्यं प्रोवाच तां तत्त्वतो ब्रह्मविद्याम्॥ मुण्डकोपनिषद् : 1. 13

ऋषि-परम्परा का गुरुत्व-

सिद्धं तत्सप्रदाये स्थिरधियमनघं श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठं
सत्वस्थं सत्यवाचं समयनियतया साधुवृत्त्यासमेतम्।
दम्भासूर्यादिमुक्तं जितविषयगणं दीर्घबन्धुं दयालुं
स्खोलित्य शाशितारं स्वपरहितपरं देशिकं भूष्णुरीप्सेत्।

शिष्यत्व-गुरुत्व-संचरण

सद्बुद्धिः साधुसेवी समुचितचरितस्तत्त्वबोधाभिलाषी
सुश्रूस्त्यक्ताभिमानः प्रणिपतनपरः प्रश्नकालप्रतीक्षः।
शान्तो दान्तोऽनसूयुश्शरणमुपगतश्शास्त्रविश्वासशास्त्री
शिष्यः प्राप्तः परीक्षां कृतविदभिमतः सत्त्वतः शिक्षणीयः॥

॥ कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम्॥

***

परमगुरु अर्थात् ईश्वर से दीक्षा का विधान

श्री अंकुर पंकजकुमार जोषी*

शास्त्रसम्मत दीक्षागुरु दुर्लभ होते हैं। यदि उचित गुरु नहीं मिले तो शिष्य का सारा परिश्रम व्यर्थ हो जाता है। शिष्य की भी बाध्यता है कि वे कुछ भी दिनों के लिए गुरु के साथ रहकर विधिवत् मन्त्र-साधना कर नहीं सकते हैं। ऐसी स्थिति मे परमगुरु अर्थात् ईश्वर को गुरु मानकर उनसे दीक्षा लेने का विधान शास्त्रों में किया गया है। ईश्वर तो गुरुओं के भी गुरु हैं। आगमसार ग्रन्थ में परम आराध्य होने के कारण भगवान् शिव को परम गुरु माना गया है। इसी नियम से अन्य स्थलों पर प्रधान देवता परम गुरु हो सकते हैं। इसी तथ्य की व्याख्या करते हुए विद्वान् लेख एव साधक श्री अंकुर पंकजकुमार जोषी का यह विशेष आलेख प्रस्तुत है।

॥ तस्मै श्री गुरवे नमः ॥
॥ श्री गणेशाय नमः ॥
॥ श्री गुरुभ्यो नमः॥

शास्त्रों में श्रीभगवान् को पञ्चकृत्यकारी कहा गया है। मुख्यरूप से सृष्टि, स्थिति, प्रलय, अनुग्रह और निग्रह –यही पञ्चकृत्य माने गए है–

यस्मिन् सृष्टिस्थितिध्वंसविधानानुग्रहात्मकम् ।
कृत्यं पञ्चविधं शश्वद्भासते तं नुमः शिवम् ।

महाप्रलय के पश्चात् चराचर जगत का अविर्भाव – सृष्टि, जगत का पालन – स्थिति, महाप्रलय के समय जगत का संहार – प्रलय , सृष्टि के जीवों को जन्ममरण से मुक्त करनेवाली करुणा– अनुग्रह और सृष्टि की स्थिति के लिए आवश्यक विधान और उसके अनुसार दंडविधान आदि से जीवों जगत का संरक्षण रूप विधा को विधान अथवा अनुग्रह कहते है।

जीव अपने अनन्त अनन्त जन्मों के अनन्त अनन्त कर्मो के परिपाक स्वरूप अनन्त योनियों में भटकता रहा है। किसी शुभ क्षण में, ईश्वर की ही कृपा से उसके मन में इस भावटवी से मुक्त होने की इच्छा जागृत होती है, और वह ईश्वर के अस्तित्वमें श्रद्धावान होता है, और तब ईश्वरकी अनुग्रह शक्ति का कार्य आरम्भ होता है।वही अनुग्रहशक्ति साकाररूप में, उस साधक के समक्ष उपस्थित होती है, जिसे "गुरु" कहा जाता है। ईश्वर की अनुग्रहशक्ति के साकारस्वरूप गुरुदेव के बताये हुए मार्ग पर अग्रसर होकर, देरसवेर साधक अपने गंतव्य को अवश्य ही प्राप्त होता है।

उपरोक्त विचार से एक बात स्पष्ट हो जाती है, की ईश्वर ही "गुरु" रूप में साधक से समक्ष उपस्थित होते है। अतःकेवल किसी देहविशेष का नाम गुरु नहीं है, किन्तु देहस्थ अनुग्रहशक्ति ही यथार्थ गुरु है। और वह अनुग्रह उपासक के कल्याण के लिए परमावश्यक तत्त्व हो जाता है।

गुरुदेव का यह अनुग्रह शिष्य में मुख्यरूप

* *ध्यानीधाम आश्रम, निकोरा, भरूच, गुजरात*

से मंत्रके स्वरूप में संक्रमित होता है, उसे ही मान्त्री दीक्षा कहते है। अत: श्रीगुरुदेव द्वारा मिला अनुग्रहयुक्तमंत्र चेतन माना जाता है, जिसके विधिपूर्वक जप से साधककी साधना अबाध गति से परमतत्व की ओर अग्रसर होती है। यही कारण है, कीमंत्रशास्त्र में पुस्तक से पढ़ कर मंत्र के जप करने का निषेध किया गया है। कहा है:

पुस्तके दृष्ट्वातु यो मन्त्रो जपते तु विमूढधिः।
मूलनाशो भवेत्तस्य फलमस्य सुदुरतः॥

जो मूर्ख पुस्तक में देख कर मंत्र का जप करते है, उनकेमूल का नाश होता है, जप के फल की बात तो बहुत दूर है। (क्रियासार)

अत: उपासना में अग्रसर होने के लिए, श्रीगुरुमुख से ही मंत्र प्राप्त करना चाहिए। परन्तु, यहाँसाधक के समक्ष एक प्रश्न उपस्थित होता है, की सिद्धांत रूप से ईश्वर की अनुग्रह शक्ति को ही यथार्थगुरु मानने पर भी, उस अनुग्रहशक्ति से युक्त देहधारीगुरु की आवश्यकता प्रतीत होती है। औरसाधन के बाल्यकाल की अपरिपक्व बुद्धिसे साधक ऐसे यथार्थ गुरु को पहचानने में प्राय: भ्रमित होता है। इसी लिए शास्त्र यथार्थ गुरु के लक्षण बताते हुए कहते है:

शान्तो दान्तः कुलीनश्च विनीतः शुद्धवेषवान्।
शुद्धाचारः सुप्रतिष्ठः शुचिर्दक्षः सुबुद्धिमान्॥
आश्रमी ध्याननिष्ठश्च मन्त्रतन्त्रविशारदः।
निग्रहानुग्रहे शक्तो गुरुरित्यभिधीयते॥

(बृहत् तंत्रसार)

जो शान्त, दान्त, कुलीन, विनीत, शुद्धवेश से युक्त, शुद्ध आचार से युक्त, सुप्रतिष्ठित, पवित्र स्वभाव वाले, कार्यदक्ष, सुबुद्धिमान, आश्रमी, ध्याननिष्ठ, मंत्र तंत्र के विशारद और शक्ति के अनुग्रह तथा निग्रह में समर्थ हों, उन्हें गुरु कहते है।

भगवत्कृपा से उक्त लक्षणों से युक्त श्रीगुरुदेव का जीवन में प्रवेश हो जाय तथा उनसे दीक्षा की प्राप्ति हो जाय, उनको सर्वथा भगवद्रूप मानकर उनमे शरणागति दृढ़ हो जाय, तो इश्वरानुग्रहशक्ति स्वरूप गुरुदेव अवश्य ही शिष्य को कृतकृत्य कर देते है। और इसी लिए गुरुभक्त ईश्वर से भी अधिक गुरुदेव की महीमा का गान करते है!

आज के समय में तटस्थ दृष्टि से देखने पर उपरोक्त लक्षणों से युक्तगुरुदेव का मिलना अतिशय दुष्कर कार्य प्रतीत होता है। प्राय: केवल बाहरी दिखावट, दंभ आदि को ही गुरुत्व मान लिया जाता है। केवल शास्त्र की लम्बी व्याख्याओं और वाद विवाद को ही अध्यात्म कहा जाता है,शारीरक व्यायाम को योग और टोने टोटके को ही तंत्र कहा जाता है! ऐसे समय में अध्यात्म पथ पर बढ़ने के इच्छुक के लिए असमंजस की स्थिति उत्पन्न होती है। अरे, कई बार तो लोग "आजकल सच्चे गुरु मिलते ही नहीं!" यह बात बनाकर साधना ही नहीं करते, और उनका अमूल्य मनुष्य जन्म ही व्यर्थ चला जाता है!

"स पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्" (योगसूत्र 1-26) में भी इसी तथ्य को कहा है कि ईश्वर काल से अनवछिन्न - काल से नष्ट न होने वाले, गुरुओं के भी गुरु हैं। इस रहस्य को ध्यान में रखकर, तंत्र-ग्रंथों में प्रत्यक्ष गुरु के अभाव में साधक को भगवान् दक्षिणामूर्ति शिव अथवा भगवान् श्रीसूर्य को गुरुरूप में स्वीकार करके, मन्त्रग्रहण का विधान बताया गया है।

सनातन धर्म के सत्शास्त्र भी सनातन है, और आज के इस कलियुग की परिस्थिति का भी ज्ञान पूर्वसे ही होने के कारण, इस समस्या का भी उपयुक्त समाधान भी शास्त्रों में दिया गया है।

जैसा की पहले कहा, गुरु मनुष्य नहीं, किन्तु ईश्वर की अनुग्रहशक्ति का मूर्तिमंत स्वरूप है। अतः गुरु ईश्वर नहीं, ईश्वर ही गुरु है। तंत्रों में भी मंत्र का चैतन्य तब जागृत होना कहा गया है, जब गुरु अपने शिष्य को परंपरा से प्राप्त मंत्र प्रदान करे। अर्थात् जो मंत्र अपने गुरु, परमगुरु, परमेष्टिगुरु की परंपरा से मिला है, उसी को शिष्य को प्रदान करने का अधिकार उन्हे होता है। इस प्रकार की यह परंपरा भी, परम गुरु, परमेष्टि गुरु आदि से होती हुई, अंत में भगवान् शिव अथवा नारायण तक पहुँचती है, तभी उस परंपरा को सनातन परंपरा कहा जाता है और ईश्वरीय अनुग्रह उस परंपरा के महात्माओं द्वारा शिष्य को अनुगृहित करता है, और मंत्र चैतन्य एवं साक्षात्कार को प्राप्त कराता है। आजकल आधुनिक परम्पराओं की दीक्षा में मंत्र के नाम पर अपने जोड़े कुछ शब्द, अशास्त्रीय एवं परंपरा विहीन होने से प्रभावहीन होते है और साधक की साधना फलीभूत नहीं हो पाती।

"स पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्" (योगसूत्र 1-26) में भी इसी तथ्य को कहा है, कि ईश्वरकाल से अनवछिन्न - काल से नष्ट न होने वाला, गुरुओं का भी गुरु है। इस रहस्य को ध्यान में रखकर, तंत्रग्रंथों में प्रत्यक्ष गुरु के अभाव में साधक को भगवान् दक्षिणामूर्ति शिव अथवा भगवान् श्रीसूर्य को गुरुरूप में स्वीकार करके, मंत्रग्रहण का विधान बताया गया है। इस प्रकार मंत्र ग्रहण करने से, मंत्रचैतन्य को प्राप्त होता है, एवं उसके जप का प्रभाव भी शीघ्र ही दीखने लगता है। इस प्रकार साधना करते हुए, यदि आवश्यक हो, तो योग्य पर भगवान् की अनुग्रह शक्ति देहधारी गुरु के रूप में भी, शिष्य के समक्ष उपस्थित हो जाती है। इसके अतिरिक्त भी, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान भगवान् अपने शरणागत भक्त शिष्य के संशयों का निराकरण अपनी शैली में समय समय पर, योग्य घटना, ग्रन्थ, प्रेरणा और संतमिलन प्राप्त करवा कर करते ही रहते है।

मेरुतंत्र, प्रपंचसारसारसंग्रह, आगमसार, पुरश्चर्यार्णव आदि ग्रंथों में शरीरधारी गुरु के अभाव में, भगवान् दक्षिणामूर्ति शिव अथवा भगवान् सूर्य को गुरुरूप में प्रतिष्ठित कर, उनसे मन्त्रग्रहण का विधान बताया गया है, जो इस प्रकार है:

गुरोरभावे मन्त्राणां ग्रहणक्रममुच्यते।
कृष्णपक्षे त्रयोदश्यां दक्षिणामूर्तिसन्निधौ॥
लिखित्वा राजतेपत्रे तालपत्रेऽथवा पुनः।
मन्त्रं तत्स्थण्डिले स्थाप्यपूजयित्वा महेश्वरम्॥
पायसादि निवेद्यं च कृत्त्वा तं प्रणिपत्य च।
शतकृत्व पठेन्मन्त्रं दक्षिणामूर्तिसन्निधौ॥
सर्वेषां चैव मन्त्राणां एवं ग्रहणमिष्यते।

(आगमसार 4/42-44)

कृष्णपक्षमें त्रयोदशी के दिन ,दक्षिणामूर्ति के सन्निकट, चाँदी के पत्र पर अथवा तालपत्र पर मन्त्र लिख कर, वेदी पर स्थापित करें। अनन्तर श्री महेश्वर की पूजा कर, पायस आदि का नैवेद्य समर्पित कर, उन्हे प्रणाम करे और दक्षिणामूर्तिकी सन्निधिमेंउस मन्त्र का सौ बार उच्चारण करें। इसी प्रकार सभी मन्त्रों का ग्रहण कहा गया है।

नद्यास्तुसिन्धुगामिन्यास्तीरेस्थित्वा तथोत्तरे।
स्थण्डिलंरचयेत्तत्र शुचौ देशे शुभे दिने॥

तालपत्रे लिखित्वा तु मन्त्रं तत्र निधाय च।
आवाह्य भास्करं तत्र यथाविधिसमर्चयेत्॥
तत्सन्निधावष्टशतं पठेत् साधकसत्तमः।
एवं गृ4णीत मतिमानपूर्वोऽयं विधिः स्मृतः॥
(आगमसार 4/45-4८)

समुद्र में जानेवाली किसी नदी के उत्तर तट पर स्थित रहकर, किसी पवित्र स्थान में, शुभ दिन में वेदी निर्माण करें। फिर मन्त्र को तालपत्र पर लिख कर, उस मन्त्र को वेदी पर स्थापित करें। वहाँ भगवान् भास्कर का आवहन करें और विधिवत् उनकी पूजा करे।तदनन्तर उत्तम साधक 10८ बार उस मन्त्र का जप करे। मतिमान् पुरुष इस प्रकार मन्त्र ग्रहण करे, यह अपूर्व विधि कही गई है।

एक मत के अनुसार भगवान् दक्षिणामूर्तिके समक्ष 10८ पत्र में 10८ बार, अथवा साधक की आयु जितनी बार मन्त्र लिखने का विधान है। यह भी कहा जाता है, कि शक्तिमन्त्रों के लिये बरगद के पत्र, विष्णुमन्त्रों के लिये पीपल के पत्र और शिवमन्त्रों के लिये बकुल के पत्र उत्तम माने गये है। ये पत्र ना मिले, तो बिल्वपत्र अथवा नागरवेल के पत्र का उपयोग करें। किन्तु यह केवल उक्त पत्रों के ना मिलने पर ही है, अन्यथा तत्तत् पत्रों का ही उपयोग हो वही उत्तम है। जिस एक पत्र को पसंद करें, 10८ मंत्र के लिए केवल वहीं एक प्रकार के पत्र का उपयोग हो। पत्र शुद्ध हो, सड़े हुए, तुटे हुए, जन्तुयुक्त न हो उसका ध्यान रखें। पत्र पर मंत्र लिखने के लिए अष्टगंध का प्रयोग करें। लेखनी में दाड़िम की लेखिनी उत्तम मानी गई है।

ऐसा भी देखा जाता है, की किसी मन्त्र की परंपरा लुप्त हो गई हो, तब उस मन्त्र की शक्ति को चैतन्यमय करने के लिए उक्त प्रयोग से दीक्षा ली जाती है।

यहाँ पुनः यहस्पष्ट करना उचित होगा, की पृथ्वी कदापि संतों से, सच्चे अनुभवी महात्माओं से विहीन नहीं होती। आज के बाह्य आडम्बर के युग में भी, सच्चे महात्मा है ही, जिनका अहं परमेश्वर में विलीन हो गया है और जो परमेश्वरीय अनुग्रहशक्ति के वाहक है। किन्तु वे स्वभाव से ही सरल और दंभरहित होते है। हमारी श्रद्धा और तत्परता की न्यूनताही, ऐसे महात्माओं को न पहचानने में मुख्य कारण है। व्यक्ति का अभिमान उसे प्रायः "महात्मा" दर्शन से वंचित रखता है।

अतः जब तक जीवन में भगवान् का स्थूल गुरुके रूप में प्रवेश न हो, तब तक उपासनाके लिए उपरोक्त विधा का आश्रय लेना चाहिए। मनुष्य जन्म का समय व्यर्थ न गंवाते गुए, शीघ्र ही मनुष्यजीवन के ध्येय हीनहि, एकमात्र ध्येय को प्राप्त करने के लिये शीघ्रातीशीघ्र शास्त्रोक्त उपासना का आश्रय लेकर साधन मे लग जाना चाहिए, जैसे की पहले कहा जा चुका है, साधना करते हुए योग्य समय पर, भगवान् आचार्यरूप में प्रगट हो ही जायेंगे!

भक्तवत्सलसद्गुरु भगवान् की जय!

***

महिमा गुरु की

पं. मार्कण्डेय शारदेय

"जैसे वर्षा की बूँदें समुद्र में स्थित सीपियों के खुले मुँह में पड़कर मोती बन जाती हैं, वैसे ही गुण-ग्रहण की विशेष क्षमता वाले सामान्य व्यक्ति भी गुणिजनों के सम्पर्क में आकर गुणवान् बन जाते हैं।"

विकासात्मक जीवन को तीन रूपों में देखना होगा- सामाजिक, शैक्षणिक एवं आध्यात्मिक। यों तो तीनों ही शिक्षा से सम्बद्ध हैं,परन्तु बीचवाले को छोड़ दोनों की डिग्रियाँ नहीं होतीं। डिग्रियाँ किसी विभाग में कार्यरत रहने के लिए अत्यावश्यक होती हैं। आज योग्यता का निर्धारण इन्हीं से होता है।पहले रूप की बात करें तो प्रारम्भिक विकास में माता-पिता का बड़ा योग होता है।इन दोनों में भी महती भूमिका माँ की ही होती है। वह गर्भधारण से बच्चे के घर-आँगन में दौड़ने तक एक-एक कदम पर क्षण-क्षण दृष्टि रखती है। सन्तान को कैसा बनाना है,मनोमूर्ति हमेशा पास रखती है।इतिहास साक्षी है कि बहुतों की उन्नति में माता की भूमिका बढ़कर रही है,पर ऐसा नहीं कि जो नामी नहीं, उनके साथ माँ का वैसा कार्य नहीं रहा। माँ एक होती है। वह कलेजे के टुकड़े को ममता के रस से सदैव पुष्ट करती है। परन्तु इसी में पढ़ाना-सिखाना भी जारी रखती है।गलत-सही का बोध कराती रहती है। इसी में कभी डाँट-डपट,चाँटा-थप्पड़ भी परोस देती है। लेकिन जल्दी द्रवित भी हो जाती है। खीज दुलार में बदल जाती है।

पिता का शिक्षण माँ के समान ही होता है, पर पढ़ाई थोड़ी कड़ी हो जाती है।सन्तान को बाहर-भीतर का दायरा बताना होता है,क्योंकि अब घर ही नहीं होता। अब तो पास-पड़ोस, मुहल्ले-टोले, गाँव-नगर भी होते हैं। ऐसे में व्यावहारिक ज्ञान जरूरी हो जाता है। पिता का वात्सल्य षड्रस भोजन की तरह हो जाता है। कभी मीठा तो कभी कड़वा। कभी कसैला तो कभी तीखा भी। परन्तु स्वास्थ्य की दृष्टि से कब क्या जरूरी है,यह तो स्वास्थ्य-विशेषज्ञ ही जानता है न! पिता को पता हो जाता है कि अभी नहीं डाँटा तो कल के लिए अच्छा नहीं। डाँट मारकर वह एक ओर जिम्मेदार अभिभावकत्व निभाता है तो दूसरी ओर अपने अंश को समझदार जीवन-पथिक बनाना चाहता है।

जब बच्चा घर से स्कूल जाता है तो माता-पिता के अतिरिक्त अब शिक्षक का दायित्व बढ़ जाता है।वह भी उसमें अपना रूप देखना चाहता है। इस कारण उसकी पात्रता बढ़ाने का

* *ज्योतिष धर्मशास्त्र विशेषज्ञ, सनातन ज्योतिष, सी/603.पाटलिग्राम एपार्टमेंट, शहीद भगत सिंह पथ, बजरंगपुरी, गुलजारबाग, पटना-800007*

उपाय पर उपाय करता है और पाठ्यसामग्री ऐसे थोड़ा-थोड़ा परोसता है कि भूख बढ़ती रहे, ललक होती रहे।उम्र के साथ शिक्षाएँ भी ऊपर जाती-जाती उच्च, उच्चतर, उच्चतम हो जाती हैं। फिर नवजात से शिशु,शिशु से बालक, बालक से किशोर, किशोर से युवा-प्रौढ़ होता वह देश का जिम्मेदार नागरिक बन घर-परिवार, देश-दुनिया के समक्ष एक पहचान बनता है।

जीवन के रहस्यों पर व्यक्ति के मन में बचपन से ही अनुत्तरित प्रश्न बने रहते हैं। वह लोगों से कुछ-कुछ पूछता-सुनता भी है और स्वयं गुनता भी है। परन्तु बहुतेरे नजरअंजाज कर जाते हैं,जैसे कि उन्हें इन गुत्थियों से कोई लेना-देना नहीं। कुछ हल्का-फुल्का जानकर बिसार देते हैं।कुछ ऐसे अवश्य होते हैं जो आध्यात्मिक जिज्ञासा से भरे होते हैं।कुछ तो दबाए रखते हैं,कुछ दोनों को समेटे चलते हैं,परन्तु कुछ एकदम विरक्त हो घर-द्वार तक छोड़कर अध्यात्मविद्या के समुपासक हो जाते हैं।

खैर, कहा जाता है 'बिनु गुरु होंहि न ज्ञान'। सही भी है। परन्तु एक ही गुरु से सम्पूर्ण जीवन धन्य नहीं हो सकता, ज्ञान का पूर्ण विकास नहीं हो सकता। इसीलिए मानें या न मानें, जीवन में पग-पग पर गुरु मिलते रहते हैं। दत्तात्रेय को लें तो उन्होंने जिन चौबीसों की चर्चा की है,वे न तो किसी गुरुकुल के उपाध्याय थे और न आचार्य-कुलपति ही। उन्होंने मानव जाति के लोगों से तो सीखा ही,मानवेतरों,छोटे जीवों से भी सीखा।ज्ञान हर जगह है,ज्ञाता हर जगह हैं,ज्ञेय हर जगह हैं; जिज्ञासु होना सबसे आवश्यक है।

'कूर्मपुराण' के उपरि विभाग में गुरुवर्ग का उत्तम निदर्शन मिलता है; जो इस प्रकार है-

उपाध्यायः पिता ज्येष्ठो भ्राता चैव महीपतिः।
मातुलः श्वशुरः त्राता मातामह-पितामहौ॥
वर्णज्येष्ठः पितृव्यः च पुंसोत्र गुरवः स्मृताः।
माता मातामही गुर्वी पितुर्मातुः च सोदराः।
श्वश्रूः पितामही ज्येष्ठा धात्री च गुरवः स्त्रियः।
(अध्याय : 12. 26-27)

अर्थात् उपाध्याय (विषय-शिक्षक), पिता, बड़ा भाई, राजा, मामा, ससुर, रक्षक, नाना, दादा, जातिश्रेष्ठ, ताऊ-चाचा; ये पुरुष गुरु हैं तो माँ, नानी, गुरुपत्नी, दादी, माता-पिता की बहनें (मौसी, बुआ), दीदी, सास एवं धात्री(धाई); ये स्त्रियाँ भी गुरु हैं।

वस्तुतः हमारे निर्माण में बाहरी या भीतरी रूप से इन सबका बड़ा योगदान रहता है। उपाध्याय, त्राता और राजा ये तीन हमारे बाह्य जीवन के सुपोषक, संवर्द्धक एवं संरक्षक हैं तो धात्री आभ्यन्तर-बाह्य दोनों का।माता-पिता से तो यह देह ही बनी होती है,लेकिन शेष तो बन्धुओं के ही अन्तर्गत आते हैं।अतः ये अन्तरंग ही होते हैं। मुख्यार्थ यह कि ये सभी समादरणीय हैं।इनका निरादर,इनसे द्वेष व विवाद अधःपतन का कारण माना गया है- 'गुरुद्वेषी पतत्यधः'(वही,12.30)। इनमें भी पाँच को अधिक महत्त्व दिया गया है-

यो भावयति या सूते येन विद्योपदिश्यते।
ज्येष्ठो भ्राता च भर्ता च पञ्चैते गुरवः स्मृताः॥
(वही,12320)

यानी, पिता, माता, विद्यादाता, ज्येष्ठ भ्राता एवं जीविकादाता; ये पाँच प्रमुख गुरु हैं।

'गुरु' शब्द 'गृ' धातु (शब्द करना)और 'उत्' प्रत्यय के योग से बना है। हाँ, गृ निगरणे (खाना, निगलना) धातु से भी बना है। परन्तु वह गुरु भारीपन का सूचक है और पहला गुरु ही ज्ञानगौरव का। इसलिए इसकी व्युत्पत्ति तीन तरह से बताई गई है- (1) गृणाति उपदिशति वेदादिशास्त्राणि इन्द्रादिदेवेभ्यः

इति। (2) गीर्यते स्तूयते देवगन्धर्वमनुष्यादिभिः। (3) गीर्यते स्तूयते महत्त्वात् इति।

इन तीनों में प्रारम्भिक दो तो आंगिरस बृहस्पति के ही वाचक हैं। तीसरा ही मनुष्यलोक के समादरणीयों का।फिर भी दूसरे में भी हमारा हिस्सा निकल ही आता है, जिसमें देव, गन्धर्व, मनुष्य आदि कहा गया है। द्वितीय-तृतीय दोनों में स्तुति की बात आई है, इसलिए गुरु स्तवनीय हैं। परन्तु प्रथम व्युत्पत्ति भले ही एक नाम का बोधक हो, पर वहीं कर्म भी ध्वनित हो रहा है- 'उपदिशति वेदादिशास्त्राणि' (जो वेद आदि शास्त्रों का उपदेश करते हैं)। बस,यहीं से तो अर्थविस्तार होते शास्त्रोपदेशकों तक यह पद आ जाता है। और देवगुरु की मूर्ति ही अपने गुरु में दिखाई देने लगती है।अब शास्त्र अपरा विद्या से सम्बन्धित हो या परा विद्या से सबके उपदेष्टा इस नाम से मण्डित होने लगे।

हमारी संस्कृति गुरु को भी पितृस्थान देती है और मानती है कि सन्तान दो तरह की होती है: जन्मना तथा विद्यया। कहा भी गया है- 'यथा पुत्रस्तथा शिष्यो न भेदः पुत्रशिष्ययोः'(जैसा पुत्र, वैसा शिष्य; दोनों में कोई भेद नहीं)। दूसरी तरह से मनु भी कहते हैं- 'अज्ञो भवति वै बालः पिता भवति मन्त्रदः'(2.153), ज्ञानदाता पिता है। हमारे पुरोहित भी इसी वर्ग में आते हैं। उपाध्याय और आचार्य दोनों की दूरी गुरु में पट जाती है, क्योंकि विषय-शिक्षक हों या कुलपति दोनों इस एक सम्बोधन में एकत्व पा लेते हैं।

वैदिक गुरु की महिमा बढ़ी-चढ़ी रही ही, पूरी उपनिषदें भी गुरूक्ति ही रहीं। परन्तु तान्त्रिक गुरु की महत्ता और ऊपर चढ़ निकली। जहाँ वैदिक गुरु सेव्य ही रहे, वहाँ तान्त्रिक गुरु उपास्य हो गए। इसीलिए 'रुद्रयामल' प्रातःकृत्य में कहता है-

'प्रातःशय्यादिकं कृत्वा पुनः शय्यास्थितः पशुः।
गुरुं संचिन्तयेत् शीर्षाम्भोजे सहस्रके दले'॥
(पटल-2.11)

अर्थात्, प्रातःकालीन नित्य क्रिया के बाद पशुभाव में संस्थित साधक पुरुष शय्या पर आकर सहस्रारचक्र में अपने गुरु का ध्यान करे।

लेकिन गुरु के इतने लक्षण बताए गए हैं,वे तो दुर्लभ ही हैं।

'चिदम्बररहस्य' के अनुसार-

नारायणे महादेवे मातापित्रोश्च राजनि।
यथा भक्तिर्भवेद् देवि! तथा कार्या निजे गुरौ॥

अर्थात्, जैसे श्रीहरि, महादेव, माता-पिता तथा राजा की भक्ति की जाती है, वैसे ही अपने गुरु की भी करनी है। इतना ही क्यों? अपने पूर्वजों की भाँति गुरु की भी तीन गुरुपीढ़ियों को भी ग्रहण कर गुरु के गुरु को परम गुरु, परम गुरु के गुरु को परमेष्ठी गुरु और उनके गुरु को परात्पर गुरु कहकर वन्दन चला।

यों तो गुरुपरम्परा की धारा वैदिक काल से ही अविरत प्रवहमान रही है, परन्तु शांकर पीठों की स्थापना के बाद से इसमें और व्यापकता आई। संन्यासियों का महापर्व गुरु-पूर्णिमा है। उस दिन शिष्यगण अपने-अपने गुरुओं के यहाँ जाकर अपनी श्रद्धा निवेदित करते हैं। परन्तु एक विधान भी निकल आया, जिसमें सारी भारतीय परम्परा ही समाहित हो गई। यह विधान भी वैष्णवप्रधान ही रहा।

'धर्मसिन्धु' में संकेतित विधि को अपने शब्दों में कहा जाए तो एक चौकोर वस्त्र आदि पर वर्गाकार या भूपुर के रूप में हल्दी-रोली से घेरा बना लें। फिर उसके बीच में तीन छोटे-छोटे ऐसे वर्ग बनाएँ कि पूरब-पच्छिम के हिस्से बराबर छूटे हों। इन तीनों वर्गों के अगल-बगल भी थोड़ा अन्तराल हो।इन तीनों के बीच में

पहले श्रीकृष्णपंचक (श्रीकृष्ण को मध्य में रखकर प्रदक्षिण/पूर्वादि क्रम से उनके चतुर्व्यूहों वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध)का अक्षतपुंज पर नाममन्त्र से ही पूजन करें। इसके बाद दक्षिण भाग में व्यासपंचक (व्यासजी को मध्य में रखकर पूर्वादि क्रम से सुमन्तु, जैमिनि, वैशम्पायन तथा पैल) का पूजन करें। तब श्रीकृष्णपञ्चक के बाई ओर भाष्यकार श्रीशङ्कराचार्य-पंचक (श्रीशङ्कराचार्य को बीच में रख प्रदक्षिण क्रम से पूरब से उत्तर तक क्रमशः पद्मपाद, विश्वरूप (सुरेश्वर), त्रोटक और हस्तामलक) की पूजा करें। अब श्रीकृष्ण

गुरुपूजन-चक्र

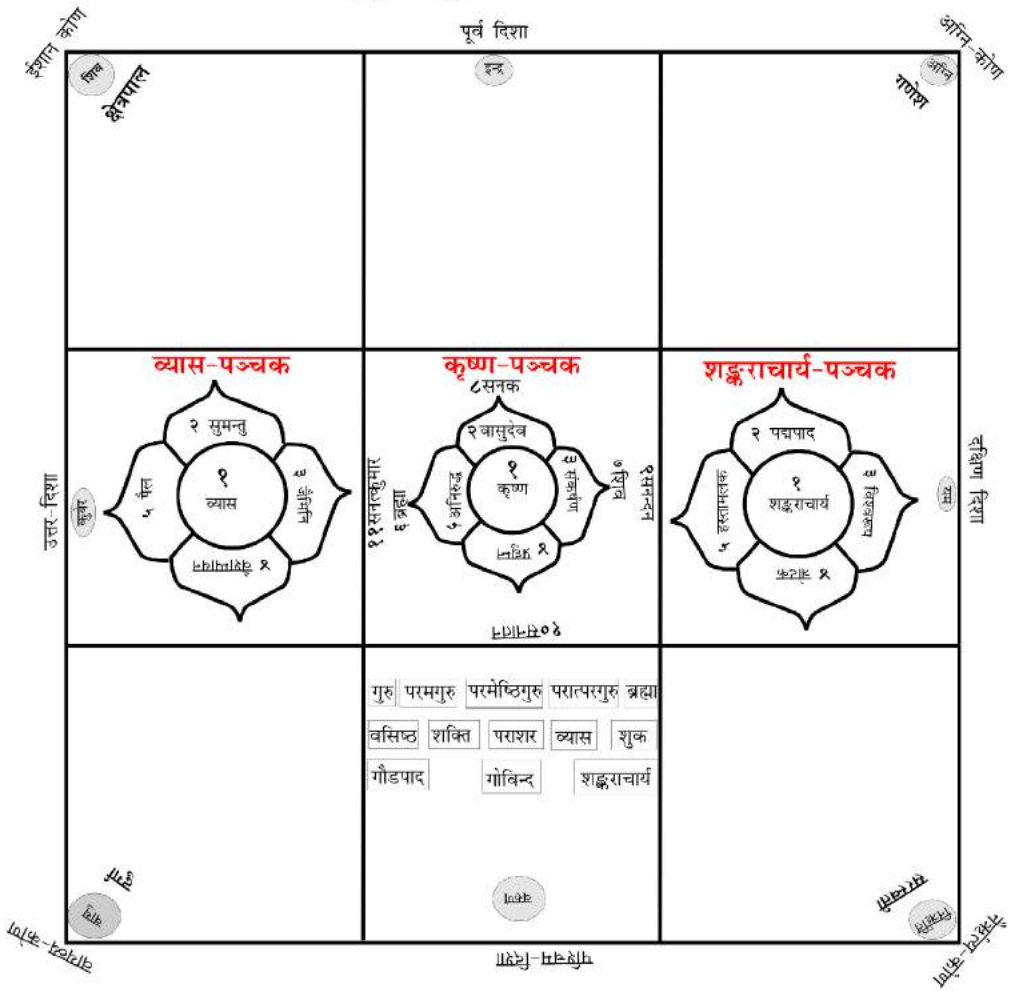

यजमान का आसन

के ही सन्निकट दाहिने ब्रह्माजी का और बाएँ शिवजी का तथा वासुदेव, संकर्षण आदि के ऊपर व पूर्वादि क्रम से सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार का पूजन करें।

अब श्रीकृष्णपंचक के आगे क्रमशः गुरु, परम गुरु, परमेष्ठी गुरु, परात्पर गुरु के साथ-साथ ब्रह्मा, वसिष्ठ, शक्ति, पराशर, व्यास, शुक, गौडपाद, गोविन्द एवं ब्रह्मनिष्ठ शंकराचार्य का पूजन करें। भूपुर व वर्ग की सीमा में ही अग्निकोण में गणेश, ईशानकोण में क्षेत्रपाल, वायव्यकोण में दुर्गा तथा नैर्ऋत्यकोण में सरस्वती की पूजा करें। इसके बाद पूरब से ईशानकोण तक में इन्द्र आदि लोकपालों की पूजा करें।

उपर्युक्त विधान की व्यापकता में हम आदि से अद्यतन तक स्वयं को जोड़ पाते हैं और समस्त गुरुओं के प्रति हमारी श्रद्धा वर्द्धमान दीखती है।

जितना महत्त्व हमारे गुरुओं का है,उनसे थोड़ा भी कम महत्त्व शिष्यों का नहीं। कालिदास कहते हैं-

पात्रविशेषे न्यस्तं गुणान्तरं शिल्पमाधातुः।
जलमिव समुद्रशुक्तौ मुक्ताफलतां पयोदस्य'॥

(मालविकाग्निमित्रम् : 1.6)

अर्थात्, जैसे वर्षा की बूँदें समुद्र में स्थित सीपियों के खुले मुँह में पड़कर मोती बन जाती हैं, वैसे ही गुण ग्रहण की विशेष क्षमतावाले सामान्य व्यक्ति भी गुणिजनों के सम्पर्क में आकर गुणवान् बन जाते हैं।

जैसे योग्य गुरु योग्य शिष्य के जनक होते हैं, वैसे योग्य शिष्य योग्य गुरु के प्रतिष्ठापक होते हैं। आजतक जो भी गुरु इतिहास के स्वर्णाक्षरों में दर्ज हैं, वे अपने शिष्यों के कारण ही। एक की योग्यता से कुछ नहीं होता। हाँ, 'गुरु कुम्हार सिख कुम्भ है' कबीर का यह कथन तभी सही है,जब वह अड़ियल टट्टू न हो। 'शिष्यते असौ' व 'शासितुं योग्यः' ये दोनों व्युत्पत्तियाँ गुरु की कड़ाई की ओर नहीं, शिष्य की मुलायमियत की ओर ही इशारा करती हैं। इसीलिए कहा गया है-

वाङ्मनःकायवसुभिः गुरुशुश्रूवणे रतः।
एतादृश-गुणोपेतः शिष्यो भवति नारद॥

(वाणी, तन, मन एवं धन से जो सदा गुरुसेवा में लगा रहे, ऐसा गुणवान ही शिष्य हो सकता है।)

देवताचार्य-शुश्रूषां मनोवाक्कायकर्मभिः।
शुद्धभावो महोत्साहो बोद्धा शिष्य इति स्मृतः॥

जो शुद्ध विचारवाला, अति उत्साहयुक्त बुद्धिमान है, जो मन, वाणी एवं कर्म से देवपूजन, गुरुसेवा करनेवाला हो; वही शिष्य कहला सकता है।

बुद्धिमान, जिज्ञासु, उत्साही होना अलग बात है और सत्पुत्र की तरह आत्मसमर्पी होना अलग। इसीलिए कहा गया है-

गुरुः पिता गुरुः माता गुरुः देवो गुरुः गतिः।
शिवे रुष्टे गुरुः त्राता गुरौ रुष्टे न कश्चन॥

(रुद्रयामल : 2. 66)

हमारे यहाँ शिक्षा में तो गुरुमहिमा अपार है ही, दीक्षा में अपरम्पार है। दीक्षा के बाद ही मन्त्र जपने योग्य होता है, इसलिए तन्त्रशास्त्र में इसकी बड़ी प्रशस्ति है। 'शारदातिलक' स्पष्ट कहता है- 'विना यया न लभ्येत सर्वमन्त्र-फलं यतः' (4.1); यानी,दीक्षा के बिना मन्त्रों के जपने से कोई लाभ नहीं। इसकी (दीक्षा की)परिभाषा में वहीं कहा गया है-

दिव्यं ज्ञानं यतो दद्यात् कुर्यात् पापस्य संक्षयः।
तस्माद् दीक्षेति सम्प्रोक्ता देशिकैः तन्त्रवेदिभिः'॥(4.2)

अर्थात्, जो दिव्य(अलौकिक)ज्ञान देती है तथा जो पापों का नाश करती है, उसे ही तन्त्रज्ञ दीक्षा कहते हैं।

***

वैदिक गुरु-तत्त्व

श्री अरुण कुमार उपाध्याय

वेद ज्ञान का अक्षय भण्डार तथा ज्ञान-परम्परा का आदि स्रोत है। अतः स्पष्टरूप से गुरुतत्त्व का भी आदिस्रोत वेद ही है। गुरु एवं गुरु तत्त्व की जो अवधारणा वैदिक-ग्रन्थों में वर्णित है, उसी का विस्तार हम आगम-ग्रन्थों की विभिन्न शाखाओं में पाते हैं। लेखक ने इसी आदि-गुरुतत्त्व पर वैदिक-साहित्य के सन्दर्भ में विमर्श प्रस्तुत किया है, जिसमें समस्त चराचर जगत् मे ही गुरुतत्त्व का समावेश है और हम उनसे ज्ञान और विद्या ग्रहण कर स्वयं को परिपुष्ट करते हैं।

अपात्रता

मैंने आवश्यकतानुसार कई गुरुओं से दीक्षा ली है, तथा बिना दीक्षा के भी योग और तन्त्र की साधना की है, जब गुरु नहीं मिल पा रहे थे। उससे भी लाभ हुआ है। पर सिद्ध होने पर जब स्वयं गुरु बनने लायक हो, तभी गुरुतत्त्व समझा और समझाया जा सकता है। केवल सामान्य चिन्तन के आधार पर गुरुतत्त्व और दीक्षा के बारे में लिख रहा हूँ।

पुस्तकें

गुरुतत्त्व के बारे में तन्त्र की प्रायः सभी पुस्तकों में लिखा है। विशेष रूप से गुरु गीता भी है जो स्कन्दपुराण उत्तरखण्ड में ईश्वर पार्वती संवाद के रूप में है। पं. गोपीनाथ कविराज की पुस्तक भारतीय संस्कृति और साधना, प्रथम खण्ड (बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, 1963) के 7 अध्यायों में इसकी विस्तृत विवेचना है-7. आदिगुरु दत्तात्रेय और अवधूत दर्शन, 10. शक्तिपात रहस्य, 12. अध्यात्म जीवन में गुरु का स्थान, 13. गुरु तत्त्व और सद्गुरु रहस्य, 14. दीक्षा रहस्य, 16. शक्ति का जागरण, 21. परम पथ का क्रम। उनकी अन्य दो पुस्तकें भी वहीं से प्रकाशित हैं-तान्त्रिक साधना और सिद्धान्त, तान्त्रिक वाङ्मय में शाक्त दृष्टि।

इस का विस्तृत वर्णन श्रीविद्या साधना (2 भागों में)- डॉ. श्यामाकान्त द्विवेदी (चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी, 2005) में है। द्विवेदीजी ने भास्करराय भारती के वरिवस्या रहस्य की भी विस्तृत व्याख्या की है। स्वामी करपात्री जी की पुस्तक श्रीविद्या रत्नाकर है। इसके अतिरिक्त उनके शिष्यों की अन्य पुस्तकें भी श्रीविद्या साधना पीठ वाराणसी से प्रकाशित हैं।

विद्या

महाविद्या-निसर्ग या प्रकृति से जो ज्ञान मिलता है वह विद्या है। ज्ञान प्राप्ति के 4 मार्ग होने के कारण 4 वेद हैं तथा विद् धातु के 4 अर्थ हैं। पहले तो किसी वस्तु की सत्ता होनी चाहिये। इसका अर्थ है आकार या मूर्त्ति जिसका वर्णन ऋग्वेद करता है। (विद् सत्तायाम्-पाणिनीय धातु पाठ 4/60)। उसके बारे में कुछ जानकारी हमारे तक पहुँचनी चाहिये। यह गति है जिसका

*भारतीय पुलिस सेवा (अ.प्रा.)सी./47, (हवाई अड्डा के निकट) पलासपल्ली, भुवनेश्वर।

वर्णन यजुर्वेद करता है। उससे सूचना की प्राप्ति होती है- विद्लृ लाभे (6/41)। सूचना मिलने पर उसका विश्लेषण पूर्व ज्ञान के आधार पर मस्तिष्क में होता है। यह ज्ञान वहीं तक हो सकता है जहां तक उस वस्तु की महिमा या प्रभाव है। महिमा रूप सामवेद है। विद् ज्ञाने (2/57)। इन सभी के लिये एक स्थिर आधार (अथर्व = जो थरथराये नहीं) की जरूरत है जो मूल अथर्व वेद है। वस्तु का आकार तभी दीखता है जब उसका रूप परिवेश से भिन्न हो। उसकी गति भी स्थिर आधार की तुलना में होती है। विचार और ज्ञान भी पूर्व सञ्चित ज्ञान (मस्तिष्क या पुस्तक में) तथा समन्वय से विचार करने से होता है। इस रूप में विद् के 2 अर्थ हैं- विद् विचारणे (7/13), विद् चेतनाख्याननिवासेषु (10/177)

4 वेदों के वर्गीकरण का आधार है-

ऋग्भ्यो जातां सर्वशो मूर्त्तिमाहुः सर्वा गतिर्याजुषी हैव शश्वत्।
सर्वं तेजं सामरूप्यं ह शश्वत्, सर्वं हेदं ब्रह्मणा हैव सृष्टम्॥

(तैत्तिरीय ब्राह्मण 3/12/8/1)

कोई वस्तु तभी दीखती है जब वह मूर्ति रूप में हो। अव्यक्त निर्विशेष का वर्णन नहीं हो सकता क्योंकि उसमें कोई भेद नहीं है। पुरुष (व्यक्ति या विश्व) के 4 रूप हैं- केवल स्थूल रूप क्षर दीखता है। अदृश्य अक्षर क्रिया रूप परिचय है- उसे कूटस्थ कहा गया है। इसी का उत्तम रूप अव्यय है-पूरे विश्व के साथ मिला कर देखने पर कहीं कुछ कम या अधिक नहीं हो रहा है। अरात्पर में कोई भेद नहीं है अतः वर्णन नहीं है। वर्णन के लिये भाषा की जरूरत है-उसमें प्रत्येक वस्तु के कर्म के अनुसार नाम हैं या ध्वनि के आधार पर शब्दों को वर्ण (या उनका मिलन अक्षर) में बांटा (व्याकृत) किया है। कुल मिलाकर 6 दर्शन और 6 दर्शवाक् (लिपि) हैं। हनुमान 9 व्याकरण जानते थे- कम से कम उतने प्रकार की भाषा थी। वर्ण-अक्षरों के रूप सदा बदलते रहते हैं, ये भी मूर्ति हैं जिनके बिना कोई मन्त्र नहीं दीखता है। (गीता अध्याय 8, ऋग्वेद 1/164/41 में लिपि का वर्गीकरण) मूल वेद को अथर्व कहते थे- इसे सर्वप्रथम ब्रह्मा ने ज्येष्ठ पुत्र अथर्वा को पढ़ाया था। इसकी 2 शाखा हुयी-परा

विद्या या विद्या जो एकीकरण है। अपरा विद्या या अविद्या वर्गीकरण है। अपरा विद्या से 4 वेद और 6 अङ्ग हुये (मुण्डकोपनिषद् 1/1/1-5)। मूल अथर्व के 3 अङ्ग ऋक्-साम-यजु होने पर मूल अथर्व भी बचा रहा। अतः त्रयी का अर्थ 4 वेद हैं- 1 मूल+ 3 शाखा। इसका प्रतीक पलाश-दण्ड है, जिससे 3 पत्ते निकलते हैं, अतः पलास ब्रह्मा का प्रतीक है और इसका दण्ड वेदारम्भ संस्कार में प्रयुक्त होता है।

अश्वत्थरूपो भगवान् विष्णुरेव न संशयः।
रुद्ररूपो वटस्तद्वत् पलाशो ब्रह्मरूपधृक्॥

(पद्मपुराण, उत्तर खण्ड 115/22)

अलाबूनि पृषत्कान्यश्वत्थ पलाशम्।
पिपीलिका वटश्वसो विद्युत् स्वापर्णशफो।
गोशफो जरिततरोऽथामो दैव॥

(अथर्व 20/135/3)

प्राप्त ज्ञान का प्रयोग महाविद्या है क्योंकि अपनी क्रिया से मनुष्य महः (परिवेश को पभावित करता है। यह गुरु परम्परा से ही प्राप्त होता है अतः इसे आगम कहते हैं। स्रोत को शिव, मन को वासुदेव (वास = चिन्तन का स्थान) तथा ग्रहण करने वाले योषा (युक्त होने वाली) को पार्वती कहा है-

आगतं पञ्चवक्त्रात्तु, गतं च गिरिजानने।
मनं च वासुदेवस्य तस्मादागम उच्यते॥

(रुद्रयामल)

अपौरुषेयता-

वेद को 3 अर्थों में अपौरुषेय कहा है-

(1) अतीन्द्रिय ज्ञान-सामान्यतः 5 ज्ञानेन्द्रियों से 5 प्राणों के माध्यम से ज्ञान होता है। अन्य 2 असत् प्राणों से अतीन्द्रिय ज्ञान होता है। इनको परोरजा तथा ऋषि कहा गया है। सृष्टि का मूल ऋषि प्राण है जो सभी चेतना से परे होने के कारण असत् है। ऊपर (स्रोत) से नीचे (शिष्य) तक ज्ञान का प्रवाह परोरजा प्राण द्वारा है, यह परोऽवरीय कहा है (पर से अवर)-

सप्त प्राणाः प्रभवन्ति तस्मात्

(मुण्डकोपनिषद् 2/1/8),

पञ्च प्राणोर्मिं पञ्च बुद्ध्यादि मूलाम्।

(श्वेताश्वतर उपनिषद्1/5)

परोरजसेऽसावदोम्

(बृहदारण्यक 5/14/7),

परोरजा य एष तपति

(बृहदारण्यक 5/14/3)

परोवरीयसो ह लोकाञ्जयति, य एतदेवं विद्वान्

(छान्दोग्य उपनिषद् 1/9/2)

असद्वा ऽइदमग्र ऽआसीत् । तदाहः - किं तदासीदिति। ऋषयो वाव तेऽग्रेऽसदासीत्। तदाहुः-के ते ऋषय इति। ते यत्पुराऽऽस्मात् सर्वस्मादिदमिच्छन्तः श्रमेण तपसारिषन्- तस्मादृषयः

(शतपथ ब्राह्मण, 6/1/1/1)

(2) कई ऋषियों का समन्वय-

वेद मन्त्रों का दर्शन मनुष्य ऋषियों द्वारा हुआ। किन्तु कई हजार वर्षों तक विभिन्न देशों के ऋषियों द्वारा मन्त्र का दर्शन होने से उनका समन्वय अपौरुषेय है।

ऋषयो मन्त्रद्रष्टारः साक्षात् कृतकर्माण ऋषयो बभूवुः। (निरुक्त 1/20)

तद्वा ऋषयः प्रति बुबुधिरे य उतर्हि ऋषय आसुः- (शतपथ ब्राह्मण 2/2/1/14)

नमो ऋषिभ्यो मन्त्रकृद्भ्यो मन्त्रविद्भ्यो मन्त्रपतिभ्यो। मा मामृषयो मन्त्रकृतो मन्त्रविदः प्राहु (दु) र्दैवी वाचमुद्यासम्॥

(वरदापूर्वतापिनी उपनिषद्, तैत्तिरीय आरण्यक, 4/1/1, मैत्रायणी संहिता 4/9/2)

ऋषे मन्त्रकृतां स्तोत्रैः कश्यपोद्वर्धयत् गिरः।
सोऽयं नमस्य राजानं यो जज्ञे वीरुधां पतिः॥

(ऋक् 9/114/2)

आप्तोपदेशः शब्दः। -(न्याय सूत्र 1/1/7)

(3) तीन विश्वों का समन्वय-विश्व के 3 स्तरों का समन्वय जो विज्ञान के प्रयोगों द्वारा सम्भव नहीं है- आधिदैविक (आकाश की सृष्टि), आधिभौतिक (पृथ्वी पर), आध्यात्मिक (मनुष्य शरीर के भीतर)। इनका एक दूसरे की प्रतिमा रूप दर्शन परोरजा या ऋषि प्राण से सम्भव है।

स ऐक्षत प्रजापतिः (स्वयम्भूः) इमं वा आत्मनः प्रतिमामसृक्षि। आत्मनो ह्येतं प्रतिमामसृजत। ता वा एताः प्रजापतेरधि देवता असृज्यन्त- (1) अग्निः (तद् गर्भितो भूपिण्डश्च), (2) इन्द्रः (तद् गर्भितः सूर्यश्च), सोमः (तद् गर्भितः चन्द्रश्च), (4) परमेष्ठी प्राजापत्यः (स्वायम्भुवः)-

शतपथ ब्राह्मण (11/6/1/12-13)

पुरुषोऽयं लोक सम्मित इत्युवाच भगवान् पुनर्वसुः आत्रेयः, यावन्तो हि लोके मूर्तिमन्तो भावविशेषास्तावन्तः पुरुषे, यावन्तः पुरुषे तावन्तो लोके॥

(चरक संहिता, शारीरस्थानम् 5/2),

अध्यात्ममधिभूतमधिदैवं च

(तत्त्वसमास 7)

किं तद् ब्रह्म किमध्यात्मं किं कर्म पुरुषोत्तम।
अधिभूतं च किं प्रोक्तमधिदैवं किमुच्यते।1।
अक्षरं ब्रह्म परमं स्वभावोऽध्यात्म उच्यते।
भूतभावोद्भवकरो विसर्गः कर्म संज्ञितः।3।
अधिभूतं क्षरो भावः पुरुषस्याधिदैवतम्।

(गीता, अध्याय 8)

5. शिव और वट-

गायत्री छन्द अन्य छन्दों की तरह 4 पाद का है, पर गायत्री मन्त्र में अर्थ के लिये 3 पाद हैं। इसमें 1 अक्षर कम है, अतः निचृद् गायत्री छन्द है। इसके 3 पाद हैं- स्रष्टा रूप ब्रह्मा, तेज रूप में दृश्य विष्णु जिसका रूप सूर्य है, तथा ज्ञान रूप शिव। इसी प्रकार के भी 3 भाग हैं, चतुर्थ अव्यक्त है जिसे अर्द्धमात्रा कहते हैं। केवल शिव रूप में, गायत्री का प्रथम पाद मूल सङ्कल्प है जिससे सृष्टि हुयी, द्वितीय पाद तेज का अनुभव है, तृतीय पाद ज्ञान है। ज्ञान रूप में गुरु-शिष्य परम्परा का प्रतीक वट है। जैसे वट वृक्ष की शाखा जमीन से लग कर अपने जैसा वृक्ष बनाता है, उसी प्रकार गुरु अपना ज्ञान देकर शिष्य को अपने जैसा मनुष्य बनाता है। मूल वृक्ष शिव है, उससे निकले अन्य वृक्ष लोकभाषा में दुमदुमा (द्रुम से द्रुम) हैं। दुमदुमा हनुमान् का प्रतीक है।

वट- विटप-समीपे भूमि-भागे निषण्णं
सकल-मुनि-जनानां ज्ञान-दातारमारात्।
त्रिभुवन- गुरुमीशं दक्षिणामूर्ति-देवं
जनन-मरण-दुःखच्छेद-दक्षं नमामि॥11॥
(दक्षिणामूर्ति स्तोत्र)

6. आकाश में गुरुतत्त्व का क्रम-

मूल सङ्कल्प का क्रिया रूप मनोता है जिसके हर मण्डल में 3-3 रूप हैं। इन 3 के भी 3-3 विभाग हैं। इन सभी का विभाजन मन-प्राण-वाक् रूपों में है। सभी मनोता के वर्गीकरण और उनके उदाहरण ईशावास्योपनिषद् का पं. मोतीलाल शर्मा द्वारा विज्ञान भाष्य, भाग 1 में दिया हुआ है।

तिस्रो वै देवानां मनोताः, तासु हि तेषां मनांसि ओतानि। वाग् वै देवानां मनोता, तस्यां हि तेषां मनांसि ओतानि। गौः हि देवानां मनोता, तस्यां हि तेषां मनांसि ओतानि। अग्निः वै देवानां मनोता, तस्मिन् हि तेषां मनांसि

ओतानि। अग्निः सर्वा मनोता, अग्नौ मनोताः संगच्छन्ते। (ऐतरेय ब्राह्मण 2/10)

यानि पञ्चधा त्रीणि त्रीणि तेभ्यो न ज्यायः परमन्यदस्त।

यस्तद् वेद स वेद सर्वम्, सर्वा दिशो बलिमस्मै हरन्ति॥

(छान्दोग्य उपनिषद् 2/21/3)

त्रिवृत् त्रिवृत् एकैका भवति तन्मे विजानीहीति। (छान्दोग्य उपनिषद् 6/4/7)

(1) विश्व के 5 पर्व- पूर्ण विश्व स्वयम्भू मण्डल है, इसके दृश्य भाग (तपः लोक) में 100 अरब ब्रह्माण्ड (ब्रह्म के अण्ड) हैं। प्रति अण्ड में निर्माण सामग्री आण्ड है। यह सबसे बड़ा ईंट होने के कारण परमेष्ठी है, इसका आकाश या आयतन परम-गुहा है। हमारे ब्रह्माण्ड का केन्द्रीय घूमने वाला चक्र आकाश-गंगा है। इसके 100 अरब ताराओं में एक सूर्य है। आकाशगंगा की सर्पाकार भुजा अहि-र्बुध्न्य (बाढ़ में सर्प) या शेष-नाग है। इसमें जहां सूर्य है वहाँ इसकी चौड़ाई के बराबर व्यास के गोल (महर्लोक) में 1000 तारा हैं, जो शेषनाग के 1000 सिर हैं। इनमें 1 सिर सूर्य है जिसके मण्डल में पृथ्वी एक कण मात्र है। सौरमण्डल में चन्द्र कक्षा का गोल आकाश के आकर्षित पदार्थ (भृगु) तथा सूर्य से निकले तेज (अंगिरा) का समन्वय रूप में अत्रि है, जिसमें जीवन का विकास होता है- अथ नयन समुत्थं ज्योतिरत्रेरिवद्यौः, सुरसरिदिव तेजो वह्नि निष्ठ्यूतमैशम्। (रघुवंश 2/75) इसके केन्द्र में पृथ्वी हमारा आधार (पद या पद्म) रूप में भूमण्डल है।

(2) स्वयम्भू के मनोता- गुरुतत्त्व का आरम्भ मूल ब्रह्म के सङ्कल्प में ही था, जिससे सृष्टि का आरम्भ हुआ। व्यक्त विश्व में प्रथम मण्डल के 3 मनोता (संकल्प का क्रिया रूप) थे- वेद, सूत्र, नियति।

1. वेद- प्रति विन्दु अन्य के बारे में जानता है या प्रभावित होता है। यह ज्ञान 3 प्रकार का है-मूर्त्ति ऋक्, गति यजु, तथा महिमा या प्रभाव साम है।

2. सूत्र- यह 2 पिण्डों के बीच का सम्बन्ध है। यह भी 3 प्रकार का है-सीमाबद्ध केन्द्र के साथ सत्य। ऋत् की सीमा या केन्द्र नहीं है। सत्य-ऋत् में कोई एक सीमा या केन्द्र है। (भागवत 10/2/26- सत्यस्य सत्यं ऋत-सत्य नेत्रं, सत्यात्मकं त्वां शरणं प्रपद्ये)।

3. नियति-यह परिवर्तन की दिशा है। यह 2 विपरीत दिशाओं में है- सञ्चर-प्रतिसञ्चर (सांख्य का तत्त्वसमास) या सम्भूति-असम्भूति (ईशावास्योपनिषद्)। दोनों गतियों का नियन्त्रण या समन्वय हृदय से होता है जिसके तत्त्व हैं-ह = आहरण या लेना, द= देना, य = यम या नियमन, चक्रीय गति। (बृहदारण्यक उपनिषद्, 5/3/1)

(3) ब्रह्माण्ड- परमेष्ठी मण्डल में निर्माण के लिये गति या यज्ञ का आरम्भ हुआ। भृगु आकर्षण करता है, अङ्गिरा (अंगार) द्वारा तेज निकलता है। पदार्थ या तेज के घनत्व के हिसाब से भृगु-अंगिरा के 3-3 भेद हैं- अग्निरादित्ययमा- इत्येतेऽङ्गिरसः .... वायुरापश्चन्द्रमा- इत्येते भृगवः (गोपथ ब्राह्मण पूर्व 2/9)। भृगु-अंगिरा का समन्वय या स्रोत (सूर्य) से अन्त (यम) तक का प्रवाह उत्पादक पूषा या एकर्षि अत्रि है- पूषन्नेकर्षे यम-सूर्य प्राजापत्य (ईशावास्योपनिषद् 16)। इनसे 3 प्रकार के निर्माण है-

1. इट् या इड़ा (ईंट) = निर्माण सामग्री, उर्क, भोग। इट् के 3 रूप हैं-अन्न = उपभोग

की वस्तु, गौ = निर्माण का स्थान तथा क्रिया, श्रद्धा = ईंटों के बीच का योग-सूत्र (आकर्षण, रासायनिक बन्धन, स्नेह)।

2. उर्क (ूवता) निर्माण की दृश्य क्रिया या गति है। इसके 3 स्तर हैं-आपः = मिश्रण के लिये पदार्थ या क्षेत्र है। इसमें गति होने से मिश्रण होता है। जन्म के लिये माता समान होने के कारण यह गति रूप वायु मातरिश्वा है (तस्मिन्नपो मातरिश्वा दधाति-ईशावास्योपनिषद्, 4)। विराट् निर्मित पिण्ड का आकार है, जिससे वह परिवेश से विशिष्ट दीखता है (विशेषेन राजते = विराट्)। रस विश्व निर्माण का मूल पदार्थ है।

3. भोग निर्माता के उपभोग लायक पदार्थ है इससे उसका काम चलता रहे। यह भी 3 स्तर का है-दधि (घना या ठोस)-सूर्य के चारों तरफ मंगल तक ठोस ग्रह हैं, जिसे दधि समुद्र कहा गया है (उसका व्यास मंगल की कक्षा है)। मधु सौर मण्डल का सक्रिय तेज है, जिसे आदित्य भी कहा है। (भागवत में यूरेनस तक की कक्षा को मधु समुद्र कहा है। यहां तक सौर वायु (ईषा-यजुर्वेद 1/1) जाती है अतः इसे ईषा-दण्ड (विष्णु पुराण 2/9 के अनुसार व्यास = 3000 सूर्य व्यास) भी कहा है। घृत परमेष्ठी का विरल सार पदार्थ है जिससे सूर्य मधु तथा घृत का निर्माण करता है।

दधि हैवास्य लोकस्य (पृथ्वी का) रूपम्, मध्वमुष्य (स्वर्ग का) घृतमन्तरिक्षस्य (सूर्य रूपी तारों के बीच का क्षेत्र)- शतपथ ब्राह्मण (7/5/1/3), गायत्रमयनं (सूर्य से 24 अहर्गण = 21 बार 2 गुणा, यूरेनस कक्षा तक) भवति ब्रह्मवर्चसकामस्य स्वर्णिनम् मधुना अमुष्मिन् लोक उपतिष्ठते। (ताण्ड्य महाब्राह्मण 13/4/10), घृतभाजना आदित्याः (शतपथ ब्राह्मण 6/6/1/11)

(4) सौर मण्डल- इसका केन्द्रीय क्षेत्र ज्योति है, 27 अहर्गण तक गौ है जहां क्रतु (सृष्टि यज्ञ) सम्भव है। जहां तक सूर्य का तेज आकाश गंगा से अधिक है वह वाक् है। वाक् सौर मण्डल का आयतन है अतः इसे आयु भी कहते हैं।

ज्योतिर्हिरण्यम् (शतपथ ब्राह्मण 4/3/4/21, गोपथ पूर्व 2/21 आदि)

ज्योतिरेष य एष (सूर्यः) तपति- (कौषीतकि ब्राह्मण 25/3,9)

शतयोजने (100 सूर्य व्यास तक) ह वा एष (आदित्यः) इतस्तपति (कौषीतकि ब्राह्मण 8/3)

गौ देवानां मनोता (ऐतरेय ब्राह्मण 2/10, कौषीतकि ब्राह्मण 10/6)

साहस्रो (1000 सूर्य व्यास तक) वा एष शतधार उत्सः (यजु 13/49) यद् गौः (शतपथ ब्राह्मण 7/5/2/24)

मित्र एव क्रतुः। स यदेव मनसा कामयतऽ इदं मे स्यादिदं कुर्वीयेति स एव क्रतुः (शतपथ ब्राह्मण 4/1/4/1)-विष्णु पुराण (2/7/8) के अनुसार मैत्रेय मण्डल 1 लाख योजन (सूर्य व्यास) तक है।

त्रिंशद् धाम वि-राजति वाक् पतङ्गाय धीमहि। प्रति वस्तोरहद्युभिः। (ऋक् 10/189/3)-यह सूर्य से 30 धाम या 33 अहर्गण तक है। संवत्सर (सूर्य से 1 वर्ष में जहां तक प्रकाश जाता है) आयुः (शतपथ ब्राह्मण 4/1/4/10)

असौ लोक (द्यु) आयुः (ऐतरेय ब्राह्मण 4/15), आयुर्वा उष्णिक् (28+2 धाम तक)-ऐतरेय ब्राह्मण (1/5)

1. ज्योति के 3 रूप-अग्नि = केन्द्र भाग, विद्युत् = विद्युत् कणों का प्रवाह -वायु या ईषादण्ड, आदित्य।

2. गौ के 3 रूप-वसु, रुद्र, आदित्य। निर्माण स्थान वसु की पुत्री। आदित्य तेज से निर्माण-यह स्वसा = बहन है। पदार्थों के टूटने (रुद्र) से निर्माण होता है = रुद्र की माता है। माता रुद्राणां दुहिता वसूनां स्वसा आदित्यानां अमृतस्य नाभिः।

प्र नु वोचं चिकितुषे जनाय मा गामनागामदितिं वधिष्टघ (ऋक् 8/101/15)

3. आयु के 3 अर्थ हैं- आयतन = कितना पदार्थ इस क्षेत्र में आ सकता है।

आय = कितना धन आया, आयु = शरीर कितना समय चल सकता है।

इनके 3 माप छन्दों में हैं-गायत्री (24), त्रिष्टुप् (44), जगती (48)

गायत्री सौर पृथ्वी है (जहाँ तक के पिण्ड सूर्य की कक्षा में रहेंगे)। त्रिष्टुप् महर्लोक तथा जगती ब्रह्माण्ड की माप है (अहर्गण क्रम में प्रत्येक धाम पिछले से 2 गुणा)

मनुष्य की आयु के भी 3 भाग हैं- गायत्री = 24 वर्ष तक गात्र का विकास, उष्णिक् (पगड़ी) = 28 वर्ष तक परिवार या संस्था का मुख्य तथा उसके बाद जगती = 48 वर्ष तक समाज कार्य।

सम्पत्ति भी 3 प्रकार की है- शरीर के भीतर की योग्यता (गायत्री), बाहर की अदृश्य सम्पत्ति (श्री), दृश्य सम्पत्ति (लक्ष्मी)।

(5) चान्द्र मण्डल-

इसके 3 मनोता हैं- रेत, यश, श्रद्धा।

1. रेत परमेष्ठी पदार्थ का कण रूप है। इसकी सघनता के 3 रूप हैं- सोम द्रव की तरह फैला है। नाभनेदिष्ट में नाभि केन्द्र है पर सीमा नहीं है। हिरण्य में केन्द्र और सीमा दोनों हैं।

2. यश रेत का प्रभाव है। इसके 3 स्तर हैं- सुरा (मद्य) मन का नियन्त्रण कम करता है। पशु = उपभोग की वस्तु। सोम = अनुपयुक्त फैला पदार्थ।

3. श्रद्धा दो भूतों के बीच का सम्बन्ध है। श्रवा (रेखा) + धा (धारण) = दो पिण्डों के बीच 1 रेखा में सम्बन्ध। यह सम्बन्ध 3 प्रकार का है- पत्नी, आपः, तेज। पत्नी बराबर का सम्बन्ध है। असुर सभ्यता में पत्नी सम्पत्ति है, भारतमें पत्नी = स्वामिनी (पति का स्त्रीलिंग रूप)- यो मे प्रतिबलो लोके स मे भर्ता भविष्यति (दुर्गासप्तशती 5/120)। आपः (जल) सम्बन्ध में दोनों एक दूसरे से मिल कर एकाकार हो जाते हैं। तेज में दूर से सम्बन्ध होता है-शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध द्वारा।

(6) पृथ्वी-भूमण्डल

पृथ्वी-भूमण्डल के मनोता हैं- वाक, गौ, द्यौ।

1. वाक् = पृथ्वी का क्षेत्र। वेद में 3 प्रकार की पृथ्वी है, पृथ्वी ग्रह, सूर्य का आकर्षण क्षेत्र, सूर्य जहां तक विन्दु रूप में दीखता है। इनकी माप छन्दों में गायत्री (24), त्रिष्टुप् (44), जगती (48) है।

2. गौ-पृथ्वी 3 रूपों में गौ है-निर्माण का स्थान, साधन, क्रिया। सौर मण्डल की तरह इसके भी 3 भाग हैं-वसु, रुद्र, आदित्य। पर इसमें अपना तेज नहीं है। सूर्य से जो किरण आती है वह गो है, उसका जो भाग पृथ्वी में रहता है वह धेनु है (अग्निं तं मन्ये यो वसुः, अस्तं यं यन्ति धेनवः- ऋक् 3/53/8)।

सूर्य का तेज सावित्री है, जो पृथ्वी द्वारा उपयोग हुआ वह गायत्री है।

3. द्यौ= आकाश। सीमा के भीतर का पिण्ड भूमि है। उसका प्रभाव क्षेत्र आकाश में फैला हुआ है, वह भूमा है। 3 सीमाओं को 3 साम कहा है (त्रिसामा -विष्णुसहस्रनाम)। 3 द्यौ: हैं-

भूमि (पृथ्वी), अन्तरिक्ष (चन्द्र कक्षा, जहां तक के पिण्ड पृथ्वी की परिक्रमा कर सकते हैं-आकाश का 1 लाख योजन का जम्बू द्वीप), द्यौ:= जहाँ तक के पिण्डों का पृथ्वी गति पर प्रभाव पड़ता है (शनि कक्षा तक का क्षेत्र, सूर्य व्यास = अक्ष का 1000 गुणा, सहस्राक्ष)।

7. आधिभौतिक गुरु-

(1) दत्तात्रेय के 24 गुरु- शिक्षा का आरम्भ होने के बाद मनुष्य स्वयं ही अपना गुरु है। विद्या का ग्रहण प्रकृति से होता है। प्रकृति के 24 तत्त्वों के अनुसार दत्तात्रेय के 24 गुरु थे। सांख्य में चेतन तत्त्व पुरुष एक ही है, बाकी 24 प्रकृति तत्त्व हैं। 24वां स्पर्श वर्ण भ इसका प्रतीक है। नक्षत्र 27 हैं पर 3 के पूर्व-उत्तर विभाजन होने से उनके 24 ही नाम हैं, अत: भ = नक्षत्र। भू = विश्व, पृथ्वी। भूमि = 25 वां (म) चेतन तत्त्व सहित जगत। भूमा = पृथ्वी की महिमा या प्रभाव जो उसकी सीमा से बहुत दूर तक है। दत्तात्रेय का ज्ञान पीठ मैसूर में दत्त पीठ है। तान्त्रिक शक्तिपात दीक्षा का योगश्री पीठ ऋषिकेष में है, जिसकी शाखायें कई स्थानों पर हैं। दत्तात्रेय के अवधूत मार्ग का वर्णन कई पुराणों में है-गणेश (1/72/33), गर्ग (7/11, 7/14), नारद (1/76) पद्म (2/103, 6/126, 127), ब्रह्म (1/104, 2/47), ब्रह्मवैवर्त्त (3/27), ब्रह्माण्ड (1/2/36, 2/3/8, 2/3/47), भविष्य (3/4/17, 4/58), भागवत (2/7, 4/1, 6/8, 7/13,11/7), मत्स्य (9/8), मार्कण्डेय (17, 38-40), वायु (70), विष्णुधर्मोत्तर (1/25, 1/237, 3/119), स्कन्द 3/1/36, 4/2/58, 4/2/84, 5/3/103), हरिवंश (1/41)। इसके अतिरिक्त दत्तात्रेय, शाण्डिल्य, त्रिशिखब्राह्मण उपनिषदों में है।

(2) पृथ्वी के विभाग- वनदुर्गा उपनिषद्, 158, ऊर्ध्वपुण्ड्रोपनिषद्,1 तथा महानारायण उपनिषद्, 4/4 में पृथ्वी का 3 प्रकार से विभाजन किया है-

अश्वक्रान्ते रथक्रान्ते विष्णुक्रान्ते वसुन्धरा।
शिरसा धारयिष्यामि रक्षस्व मां पदे पदे॥

श्रीविद्या साधना की शिवाकान्त द्विवेदी की टीका, भाग 1 (पृष्ठ 12) में इसे भारत भारत का विभाजन माना है-

विष्णुक्रान्ता = भारत का उत्तर पूर्व भाग,
रथक्रान्ता = विन्ध्य से महाचीन (तिब्बत)

अश्वक्रान्ता- शाक्तमंगल तन्त्र के अनुसार विध्य से दक्षिण समुद्र। महासिद्धिसार के अनुसार करतोया (दक्षिण ओड़िशा की कटारधोया) नदी से जावा तक।

इन 3 क्रान्ताओं में 64 प्रकार के तन्त्र प्रचलित हैं। अश्वपति को केकय का या जनमेजय दानपत्र में उत्कल का राजा कहा गया है। उनके अधिकारी हय-शाल थे जिनसे कर्णाटक के होयसल या महाराष्ट्र के भोंसले थे। हाथी मुख्यत: असम या कर्णाटक में पकड़े जाते थे। असम के भगदत्त तथा पाण्ड्य राजा के हाथी युद्ध के कौशल का महाभारत युद्ध में वर्णन है, पर कलिंग के राजाओं को ही गजपति कहते हैं। कलिंग की गज सेना से भीमसेन का युद्ध हुआ था। अश्व-रथ-गज का वर्णन श्रीसूक्त में भी है-

अश्वपूर्वां रथमध्यां हस्तिनादप्रबोधिनीम्।

(श्रीसूक्त 3)

मध्य में रथ मनुष्य (या किसी लोक का) शरीर है। शरीर की इन्द्रियों को अश्व कहा गया है। शरीर का बल हस्ति कहा है।

आत्मानं रथिनं विद्धि, शरीरं रथमेव तु।
बुद्धिं तु सारथिं विद्धि, मनः प्रग्रहमेव च॥

(कठोपनिषद् 1/3/3)

बलेषु हस्तिबलादीनि (योगसूत्र 3/25)

सृष्टिक्रम में पहले अश्व (प्राण का प्रवाह), उसके बाद लोक या विश्व का निर्माण, उसके बाद सम्पत्ति सञ्चय रूप गज-लक्ष्मी होती हैं। लक्ष्मी का स्थूल रूप दीखता है, अतः गज है। जो नहीं दीखता, वह श्री है (मेधा, बुद्धि, दया आदि)।

शरीररूपी रथ की सञ्चालक श्री है, अश्वरूपी इन्द्रियों का जो संयम करता है, उसके पास स्थिर लक्ष्मी आती है। लक्ष्मीं अनपगामिनीं (श्रीसूक्त 15) या रामचरितमानस, सुन्दरकाण्ड 34/1-

नाथ भगति अति सुखदायनी।
देहु कृपा करि अनपायनी॥

देशों और क्षेत्रों का अश्व-रथ-विष्णु रूप में विभाजन स्पष्ट नहीं है। सम्भवतः इन क्षेत्रों की भिन्न परिस्थितियों के कारण साधना विधि या जीविका के साधन अलग अलग होंगे।

(3) शिक्षा गुरु- ये वही हैं जो प्राथमिक विद्यालय से विश्वविद्यालय तक पढ़ाते हैं। हर स्तर पर कुछ चीज गुरु द्वारा सीखना पड़ता है। जैसे वर्णमाला दे सकते हैं, पर किस चिह्न का क्या नाम है या उसका उच्चारण कैसे होगा यह गुरु ही बता सकता है। तैत्तिरीय उपनिषद् का आरम्भ शीक्षा वल्ली में उच्चारण शिक्षा से ही हुआ है। पाणिनीय तथा इसी प्रकार की अन्य शिक्षाओं में भी यही है। इसी से ज्ञान का आरम्भ होता है, अतः इसे ही शिक्षा कहा है। तैत्तिरीय उपनिषद् में हर प्रकार की शिक्षा का सार रहस्य दिया है, जिसकी पूर्ण व्याख्या अभी तक नहीं हुयी है। शान्तिपाठ के बाद है-

शीक्षां व्याख्यास्यामः। वर्णः स्वरः। मात्रा बलम्। साम सन्तानः।

= अब हम शिक्षा का व्याख्यान करेंगे जिसमें वर्ण, स्वर, मात्रा, बल, साम और सन्तान-ये शिक्षा के 6 उपकरण होते हैं।

अगले तृतीय अनुवाक् में 5 प्रकार के ज्ञान का उल्लेख है-

अधिलोक-पूर्व रूप-पृथिवी, उत्तर रूप-द्यौ, सन्धि-आकाश, सन्धान-वायु।

अधिज्यौतिष-अग्नि, आदित्य, आपः, वैद्युत।

अधिविद्या-आचार्य, शिष्य, विद्या, प्रवचन।

अधिप्रजा-माता, पिता, प्रजा = सन्तान, प्रजनन।

अध्यात्म-अधर हनु, उत्तर हनु, वाणी, जिह्वा।

दोनों हनु के बीच ज्ञान और कर्म के 5-5 इन्द्रियों की सन्धि है। जो ज्ञान और कर्म-दोनों में श्रेष्ठ है, वह हनुमान् है- जिनके विशेषण हैं-मनोजवं, ज्ञानिनामग्रगण्यं, सकलगुणनिधानम् आदि ।

गीता अध्याय 8 में 3 विश्व हैं-अधि दैव, अधिभूत, अध्यात्म। ये 3 विश्व एक दूसरे की प्रतिमा हैं। पर इनमें ज्ञानप्राप्ति की क्रिया 5 प्रकार की है।

प्राथमिक शिक्षा के बाद मनुष्य वस्तुओं के नाम रूप भी गुरु से सीखता है। उसके बाद वह स्वयं पुस्तक पढ़ कर या अध्ययन

कर जान सकता है। लेकिन व्यावहारिक काम की विधि गुरु के प्रत्यक्ष नियन्त्रण में ही सीखनी पड़ती है- सभी प्रकार के शिल्प, तन्त्र, ध्यान आदि। यह गुरु परम्परा से आता है अतः इसे आगम कहते हैं।

8. आध्यात्मिक गुरु-

शरीर के भीतर आज्ञा चक्र को ही गुरु चक्र भी कहा जाता है। यह भ्रूमध्य के पीछे मस्तिष्क के केन्द्र में है। यहाँ तक मेरुदण्ड केन्द्र में मूलाधार से ऊपर उठती हुयी सुषुम्ना नाड़ी के दोनों भाग इड़ा-पिङ्गला आते हैं। इससे ऊपर जहाँ इडा-पिङ्गला-सुषुम्ना का मिलन होता है, वह त्रिकूट या कैलास पर्वत है जहां गुरु रूप अद्वैत शिव हैं। आज्ञा चक्र के दो पद्म हैं, जो शिव-शक्ति का मिलित रूप हैं। इनको ही वेद में दो सुपर्ण या हंस कहा गया है। आकाश में गतिशील प्राण हंस है। मस्तिष्क के भीतर के 2 हंस भौतिक रूप में दाहिने-बांये भाग हैं। इनके भीतर जितना सम्बन्ध सूत्र होगा, मनुष्य की उतनी अधिक प्रतिभा होगी। वेद में कहा है कि जीवन का या स्वचालित संस्था का यह आधार है। जब एक कर्म में लिप्त रहता है, तो दूसरा उस पर नजर रखता है, जिससे कोई भूल हो तो सुधार किया जा सके। इसकी नकल पर स्वचालित उपकरण बने हैं, जिनमें दुहरा नियन्त्रण रहता है। इन दो सुपर्णों को आत्मा-जीव (बाइबिल में आदम-ईव) कहा है।

वीभत्सूनां सयुजं हंसं आहुरपां दिव्यानां सख्ये चरन्तम्।
अनुष्टुभमनु चंचूर्यमाणं इन्द्रं निचिक्युः कवयो मनीषा॥

(ऋक् 10/124/9)

= आकाश में शून्य में भी फैला विकिरण इन्द्र है (इन्धि दीप्तौ- धातुपाठ 7/11, इन्धन = जलावन)। यह माया (आवरण द्वारा सीमित होकर विभिन्न पदार्थों का रूप लेता है (रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव- कठोपनिषद् 5/9-10, बृहदारण्यक 2/5/19)। वीभत्सु = निराश्रय, डरने वाला। वायु या गतिशील प्राण हंस के साथ सयुज (जुड़ कर) वह आकाश में चल सकता है। इसके आधिदैविक, आधिभौतिक, आध्यात्मिक अर्थ हैं। आध्यात्मिक में प्रति अक्षर के 8 खण्ड हो सकते हैं- चूर्ण रूप में अनुष्टुप् (प्रति पाद 8 अक्षर) है। उसकी शक्ति के 9 विन्दु हंस हैं- वाचामष्टापदीमहं, नवशक्ति- मृतस्पृशम् (ऋक् 8/76/12)। सूर्य से आने वाली किरण सुषुम्ना है, शरीर की सुषुम्ना से उसका सम्बन्ध है। वह चन्द्र के गन्धर्व तत्त्व से प्रभावित हो कर मन को नियन्त्रित करता है। गन्धर्व ब्रह्माण्ड के अप् तत्त्व में (अप्सरा) नक्षत्रों के अनुसार बदलता है-

सुषुम्नः सूर्यरश्मिश्चन्द्रमा गन्धर्वस्तस्य नक्षत्राण्य-प्सरसो (अप्सरसो वेकुरयः) वेकुरयः

(तैत्तिरीय संहिता 3/4/7/1)

शरीर के भीतर सूर्य केन्द्र नाभि से सुषुम्ना मार्ग से नासिका रन्ध्रों से श्वास को नियन्त्रित करता है। श्वास गति को हंस (हं + सं) या विपरीत क्रम में सोऽहं (Swan) कहते हैं। इन हंसों के ऊपर केन्द्र में आरूढ़ सरस्वती है। सरस्वती तु या नाड़ी सा जिह्वान्तं प्रसर्पति (योगशिखोपनिषद् 5/23)। श्वास रूपी हंसों में जिसकी चेतना है वह हंस है। उनके द्वैत से जो ऊपर उठकर अद्वैत का अनुभव करता है, वह परमहंस है।

दो हंस-

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते।

तयोरन्यः पिप्पलं स्वावत्ति अनश्नन्नन्यो अभिचाकषीति॥

(मुण्डक उप. 3/1/1, श्वेताश्वतर उप. 4/6, ऋक् 1/164/20, अथर्व 9/9/20)

सुषुम्ना चेतना या ज्ञान का वृक्ष है। उसके मध्य (आज्ञा चक्र) में 2 सुपर्ण (हंस, पक्षी) रहते हैं (परिषस्वजाते- पड़ोस में)। उनमें अन्य (एक) पिप्पल (पिब् + फल = जिस फल में आसक्ति हो) को स्वाद सहित खाता है। अन्य (दूसरा) बिना खाये (बिना आसक्ति = अनश्नन्) केवल देखभाल करता है। आकाश में भी सृष्टि निर्माण का क्रम (स्वयम्भू से पृथ्वी तक) स्कम्भ या वृक्ष है। इसके हर स्तर पर ब्रह्म के 2 रूप हैं, निर्विशेष निर्लिप्त रहता है, विशिष्ट रूप विविध या विशिष्ट सृष्टि करता है। निर्विशेष में भेद नहीं होने के कारण उसका वर्णन नहीं होता, उपवर्णन हो सकता है। विविध सृष्टि के देवों के अलग अलग बाह्य रूप या लिंग (चिह्न) है-

एवं गजेन्द्रमुपवर्णित निर्विशेषं ब्रह्मादयो विविध लिङ्गभिधाभिमानाः (गजेन्द्रमोक्ष)।

आज्ञाचक्र केन्द्र के चारों तरफ मस्तिष्क तथा उसके नीचे उपमस्तिष्क के 4 खण्ड भौतिक रूप में शिव के 4 मुख हैं- ईशान, तत्पुरुष, तत्पुरुष, सद्योजात। बीच का केन्द्र अघोर मुख है जिसमें चारों लीन होते हैं। आज्ञा के दोनों तरफ के भागों का परस्पर सम्बन्ध से ही 18 प्रकार की विद्या आती है (शिव के 4 मुखों का समन्वय-मालिनी विजयोत्तर तन्त्र, गोपीनाथ कविराज का- तान्त्रिक साधना और सिद्धान्त, अध्याय 1)

समुन्मीलत् संवित्-कमल मकरन्दैक रसिकं
भजे हंसद्वन्द्वं किमपि महतां मानसचरम्।
यदालापादष्टादश गुणित विद्या परिणतिः
तदादत्ते दोषाद् गुणमखिलमद्भ्यः पय इव॥

(शङ्कराचार्य, सौन्दर्यलहरी, 38)

संवित्-कमल को बाइबिल में ज्ञान का वृक्ष कहा है। मस्तिष्क में जो सूचनाओं का संग्रह है, वह अप्=जल है। उसके भीतर से क्रमबद्ध ज्ञान (जो वाक्य में लिखा जा सके) दूध जैसा उपयोगी है। यही मन के हंस द्वारा जल से दूध निकालना है। भौतिक रूप में मान सरोवर का हंस जल में दूध के मिश्रण से दूध नहीं निकाल सकता।

***

("गुरु कृपा से ही सच्चा ज्ञान" का शेषांश- पृ. 15 से जारी)

लोक (सामाजिक धंधा) और वेद(यज्ञादि कर्म) के साथ-साथ उनके पीछे लगा हुआ कोई जा रहा था। आगे चलकर उसे एक सद्गुरु मिल गये, जिन्होंने उसके हाथ में दीपक (ज्ञान रूपी प्रकाश) दे दिया। अब वह इस सांसारिक झंझट रूपी अन्धकार से निकलने का मार्ग देखने लगा।

गुरु गोविन्द तो एक है, दूजा यहू अकार।
आपा मेटि जीवत मरै, तो पाबै करतार॥

अर्थात् गुरु और भगवान् एक हैं, दोनों में भेद नहीं है, केवल आकार दो हैं। भक्त अपना अहंकार मिटाकर यदि मरे तो वह जगत्कर्ता (परमात्मा) को पा लेबे।

इस प्रकार गुरु महिमा से शास्त्र-पुराण भरे-पड़े हुए हैं। गुरु के कज्ञान से ही हमारा मानव समाज, शास्त्र-पुराण, ज्ञान-विज्ञान, कला-कौशल उन्नति के शिखर पर पहुँच रहे हैं। अतः गुरु की पूजा-वन्दना से हमारी आत्मोन्नति, विद्योन्नति के साथ राष्ट्रोन्नति सुनिश्चित है।

***

तुलसीदास की गुरु-विषयक अवधारणा

-डॉ. श्रीकांत सिंह

गुरु' शब्द के कोश-लब्ध अनेक अर्थ हैं। 'बृहत् हिन्दीकोश' (पृ. 328) में आचार्य, अध्यापक, शिक्षक, उस्ताद, गम्भीर, महत्, पूज्य पुरुषादि शब्द 'गुरु' शब्द के समानार्थी हैं। विभिन्न ग्रन्थों में इन शब्दों के आधार पर 'गुरु' नामक व्यक्ति विशेष के चरित्रोद्घाटन एवं महिमा-मण्डन का सराहनीय प्रयास किया गया है। 'गुरु-गीता' (श्लोक सं.- 43) में 'गुरु' को ब्रह्मा, विष्णु, महेश तथा परब्रह्म तक कहा गया है। 'गुरु-गीता' (श्लोक सं.- 12) में यह भी वर्णित है कि गुरु शिष्य के मोहरूपी अन्धकार को दूर करनेवाले महान् व्यक्ति होते हैं। 'श्वेताश्वतरोपनिषद्' (6.23) में गुरु तथा भगवान् के प्रति समान श्रद्धा रखने की बात कही गयी है। साथ ही 'मुण्डको पनिषद्' (1. 2.12) में ज्ञानार्जन हेतु 'श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ' गुरु के चुनने एवं उनके निकट जाने का उपदेश दिया गया है। 'श्रीमद्भागवत' (11.3.21) में 'गुरु के लक्षण बताते हुए कहा गया है कि वह शब्द शास्त्र और अनुभव दोनों में पारंगत होता है। अत: उत्तम श्रेय की साधना के लिए जिज्ञासु को चाहिए कि वह ऐसे गुरु की शरण में जाए जो शब्दब्रह्म में निष्णात, अनुभवी और शान्त हो। 'पदम पुराण' (भूमिखण्ड 85.8) में वर्णित है कि जिस प्रकार सूर्य सम्पूर्ण लोकों को प्रकाशित करता है, उसी प्रकार गुरु शिष्य के अन्तर्जगत् को प्रकाशपूर्ण बनाता है। शंकराचार्य की प्रश्नोत्तरी (संख्या- 171) में 'गुरु कौन है?' के उत्तर में कहा गया है कि 'जो केवल हित का उपदेश करने वाला है, वही गुरु है (**को वा गुरुर्यो हि हितोपदेष्टा**)।

ध्यातव्य है कि माता-पिता को देवतुल्य मानने के साथ-साथ 'गुरु' को भी इसी कोटि में रखा गया है। पुन: मातृ ऋण एवं पितृ ऋण से निर्ऋणता के अतिरिक्त गुरु-ऋण से ऋण मुक्त होने की बात भी कही गयी है। पुराने इतिहास ग्रन्थों में गुरुदक्षिणा तथा गुरु-ऋण को चुकता करने से सम्बन्धित अनेक कथाएँ मिलती हैं। उन ग्रन्थों में गुरुओं की महानता पूर्वाग्रहग्रस्तता तथा शिष्यों की कृतज्ञता-कृतघ्नता का सविस्तर वर्णन है। प्राचीन शिक्षा की गुरुकुल प्रणाली के सन्दर्भ में 'गुरु' के उदात्त चरित्र के सम्यक् दर्शन किए जा सकते हैं। 'गुरु' की ऐसी ही गुरुता और महत्ता ने नाभादास को 'भक्तमाल' में यह कहने को विवश कर दिया- 'भक्ति भक्त भगवन्त गुरु चतुर नाम बपु एक।' कबीर भी कायल हैं 'गुरु' के गुण और उसकी उदारता को देखकर तभी तो कबीर की अवध ारणा में भी गुरु गोविन्द सदृश ही हैं। कुछ बढ़कर और महत्तर ही।

अस्तु, कबीर ने कहा

गुरु गोबिन्द दोऊ खड़े काके लागूँ पाय।
बलिहारी गुरु आपने जिन गोबिन्द दियो बताय॥

*प्राध्यापक, स्नातकोत्तर हिन्दी-विभाग कॉलेज ऑफ कॉमर्स, पटना-20

गोविन्द के गौरव और भगवान् की भगवत्ता का ज्ञान गुरु ने ही कराया है। अतः कबीर की ओर से पहला प्रणाम गुरु को। प्रायः अनेक महान् व्यक्तियों के ख्यातिलब्ध जीवन के मूल में गुरु-प्रेरणा ही नियामिका रही है। गुरु शिष्य के व्यक्तित्व को गढ़ने के लिए कभी कुंभकार की भूमिका में होता है तो कभी रजक की। 'गुरु कुम्हार सिष कुम्भ है. ...' तथा 'गुरु धोबी सिष कापड़ा ....' साखियों के माध्यम से कबीरदास ने कुछ ऐसी ही सच्चाइयों को उजागर किया है।

....'तुलसीदास की गुरु विषयक अवधारणा' के उद्घाटन के पूर्व उपर्युक्त विवेचन अत्यावश्यक था, क्योंकि उपरि विवेचन के आलोक में प्रस्तुत विषय को समझने में सहजता होगी। **'नानापुराणनिगमागमसम्मतं यद् रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोऽपि.....'** को अधिगत करने वाले तुलसीदास के मानस मन्दिर में अधिष्ठित 'गुरु' के विषय में उनकी बृहत्तर अवधारणा है। और भला क्यों न हो? माता-पिता द्वारा से वंचित, समाज द्वारा तिरस्कृत और दुर्भाग्य के दावानल में जलते हुए तुलसीदास का उद्धार गुरु की अहैतु की कृपावृष्टि ही करती है। तुलसीदास की दृष्टि में गुरु साक्षात् शंकर स्वरूप हैं। अनाथों के नाथ-भोलानाथ सदृश! उस आशुतोष-अवढरदानी के समान जिसके आश्रय में जाते ही वक्र चन्द्रमा भी वन्द्य हो जाता है। तुलसीदास का टेढ़ा भाग्य तभी ऋजुता को प्राप्त करता है जब आकाशध र्मा गुरु का आश्रय और स्नेह उन्हें प्राप्त होता है। अन्धकार में भटक रहे तुलसीदास को तभी त्राण मिलता है, जब उन्हें शंकर सदृश गुरु की प्राप्ति होती है। तुलसीदास की दृष्टि में गुरु वही हो सकता है, जिसने 'शिव-चरित' को अपने में समाहित कर लिया हो। अनेक स्थलों पर तुलसीदास महेश और भवानी को माता-पिता और गुरु रूप में स्मरण करते हैं। वे जन्म देनेवाले अपने माँ-बाप को खारिज कर देते हैं। वैसे माँ-बाप उन्हें स्वीकार्य नहीं हैं, जो बालक के जन्म लेने पर 'परितृप्त' होने के बजाय 'परितप्त' हो जाएँ और सद्योजातक को घर से निकाल दें :-

जायो कुल मंगन बधावनो बजायो, सुनि
भयो परितापु पापु जननी-जनक को।

(कविता.उ.कां. 73)

अस्तु, तुलसीदास के सर्वस्व तो शिव ही हैं जिन्होंने दुर्भाग्य की दरिया में डूबते उनको बचाया। यह अकारण नहीं है कि तुलसीदास माता-पिता और गुरु में महेश-भवानी को याद करते हैं :

गुरु पितु मातु महेस भवानी

(मा. 1.15.3)

मेरे माय बाप गुरु संकर भवानिए

(कवितावली, उ. को. 168)

वन्दे बोधमयं नित्यं गुरुं शंकररूपिणम् ।
यमाश्रितो हि वक्रोऽपि चन्द्रः सर्वत्र वन्द्यते॥

(मा. मंगलाचरण श्लोक सं. 3)

'रामचरितमानस' के 'गुरु-वन्दना प्रकरण' में तुलसीदास ने 'गुरु' को मनुष्य रूप में ईश्वर तथा कृपा का समुद्र कहा है। 'गुरु' के वचन सूर्य किरणों के समूह सदृश हैं, जिससे शिष्य के महामोह रूपी अन्धकार का नाश होता है। बिना गुरु-कृपा के शिष्य सांसरिक दुःखों से मुक्त नहीं हो पाता है, जिसे दिव्य दृष्टि नहीं मिल पाती है, उसको समदृष्टि भी प्राप्त नहीं हो पाती है। अर्थात् तुलसीदास की दृष्टि में सम्पूर्ण मानव बनने के लिए गुरु-कृपा अत्यावश्यक है। रामकथा के विषय में तुलसीदास

को जो कुछ जानकारी अथवा ज्ञान प्राप्त हुआ है सब गुरु-कृपा की बदौलत ही। 'बिन गुरु होइ की ग्यान...' कहने वाले तुलसीदास अपने मानस-गुरु शंकर, रामकथा के वक्ता याज्ञवल्क्य और काकभुशुण्डि आदि के प्रति कृतज्ञ हो आदर व्यक्त करते हैं। निज गुरु बाबा नरहरि के प्रति भी कृतज्ञता ज्ञापित करते हुए, अपनी बालपना-नासमझी-अल्पज्ञता का उद्घाटन करते हुए कहते हैं :-

मैं पुनि निज गुर सन सुनी कथा सो सुकरखेत।
समुझि नहिं तसि बालपन तब अति रहेऊँ अचेत॥

(मा. 1.30 क)

तदपि कही गुर बारहिं बारा ।
समुझि परी कछु मति अनुसारा ॥

(मा. 1.31.1)

तुलसीदास को जो समझदारी प्राप्त हुई है, जीवन की दैनन्दिन चिन्ताओं से मुक्ति मिली है तथा उनका मन रामकथा के चिन्तन-मनन-श्रवण-कथनादि में प्रवृत्त हुआ है- सब गुरु के साहचर्य, स्नेह और उद्बोधन के फलस्वरूप ही। ब्रह्म द्वारा लिखा उनका 'कुभाग' (कवितावली, उ0.कां. 57) गुरु-कृपा के कारण ही 'सुभाग' में परिवर्त्तित हो जाता है। कदाचित् इसीलिए तुलसीदास की दृष्टि में विधाता से भी बढ़कर प्रभावकारी हैं गुरु!

राखइ गुरु जौं कोप बिधाता।
गुरु बिरोध नहिं कोउ जग त्राता॥

(मा. 1.166.1)

गुरु के बिना कोई भवसागर नहीं पार कर सकता है, चाहे वह ब्रह्मा और शंकर के समान ही क्यों न हो?

गुर बिनु भवनिधि तरहि न कोई।
जौं बिरंचि संकर सम होई॥

(मा. 7.93.5)

स्वयं राम ने अपने गुरु की कृपा से ही रण में राक्षसों का वध किया है। यह बात 'रामचरितमानस' के राम ने अपने समस्त सखाओं के सामने स्वयं स्वीकार किया है :

गुर वसिष्ठ कुल पूज्य हमारे।
इन्ह की कृपाँ दनुज रन मारे॥

(मा. 7.8.6)

'रामचरितमानस' के उत्तरकाण्ड के काकभुशुण्डि-गरुड़ प्रसंग में एक अभिमानी शिष्य द्वारा गुरु की अवज्ञा, उस शिष्य को शंकर द्वारा प्रदत्त भीषण शाप, और फिर गुरु द्वारा शिष्य के शापानुग्रह के लिए शंकर की प्रार्थना का सविस्तर वर्णन है। इस प्रकरण में तुलसीदास ने गुरु के सम्यक् चित्त, उदारता एवं महानता का वर्णन बखूबी किया है। उनके अनुसार जो मूर्ख गुरु से ईर्ष्या करते हैं, वे करोड़ों युगों तक रौरव नरक में पड़े रहते हैं। जन्म-जन्मान्तरों तक दुःख पाते हैं:

जे सठ गुरु सन इरिषा करहीं।
रौरव नरक कोटि जुग परहीं॥
त्रिजय जोनि पुनि धरहिं सरीरा।
अयुत जन्म भरि पावहिं पीरा॥

(मा. 7.107.5-6)

तुलसीदास के अनुसार गुरु की निन्दा करनेवाला मनुष्य अगले जन्म में मेढक होता है और वह हजार जन्मों तक उसी मेढक का शरीर पाते रहता है:-

हर गुर निंदक दादुर होई।
जन्म सहस्त्र पाव तन सोई॥

(मा. 7.121.23)

ऊपर के वर्णन से यह स्पष्ट होता है कि तुलसीदास की दृष्टि में गुरु का स्थान अत्यन्त गौरवपूर्ण एवं गरिमायुक्त है। लेकिन तभी तक, जब गुरु अपनी उपर्युक्त मर्यादा के मानदण्ड पर खरा उतरते हैं। 'गुरु' शब्द की

गम्भीरता और महानता को सार्थक करते हैं। अन्यथा, उच्चासन और मर्यादा से क्रमशः च्युत एवं स्खलित होते ही गुरु तुलसीदास की दृष्टि में नरक के अधिकारी हो जाते हैं:-

गुरु शिष बधिर अंध का लेखा।
एक न सुनइ एक नहिं देखा॥
हरइ सिष्य धन सोक न हरई।
सो गुरु घोर नरक महुँ परई॥

(मा. 7.99.6-7)

स्पष्टतः तुलसीदास ने इस प्रसंग में गुरु की 'उस्तादी' का वर्णन किया है। ध्यातव्य है कि गुरु का एक समानार्थी शब्द 'उस्ताद' है। उस्ताद का अर्थ चालक और धूर्त भी होता है। अगर गुरु अपने शातिरपना को चरितार्थ करने में लग जाएँ, शिष्यों के मोहान्धकार, समस्या, प्रश्नादि को दूर करने के बजाय येन-केन-प्रकारेण धन-संग्रह को तब तुलसीदास की दृष्टि में वे 'नररूप हरि' नहीं बल्कि 'नरक महुँ परि' हैं। तब तुलसीदास की दृष्टि में वे महान्, देवतुल्य और आदरणीय नहीं, प्रत्युत सर्वथा त्याग देने के योग्य हैं। तुलसीदास की दृष्टि में ऐसे गुरु कदापि स्वीकार्य एवं वन्द्य नहीं हैं जो सदैव स्वार्थ के संकुचित घेरे में कैद रहते हैं और निरन्तर कपटाचरण में लगे रहते हैं। जो प्रकाश बाँटने के बजाय अन्धकार के उत्सव का आयोजन करना ही अपना गुरु-धर्म मानते हैं। जो अव्वल दर्जे के अनुदार और अपने राग-द्वेष से हमेशा पीड़ित रहते हैं।

तुलसीदास की अवधारणा में गुरु को शंकर-सदृश होना चाहिए। उसका महत्त्वपूर्ण कारण यह है कि शंकर समता के देवता हैं। कल्याण के प्रतिरूप हैं। संकटों को शमित करनेवाले और कष्टों को हरण करनेवाले हैं। भक्तों पर शीघ्र ही प्रसन्न हो जानेवाले हैं। अपनी हानि सहकर भी दूसरें की भलाई करनेवाले हैं। शंकर के इस उदात्त और महत् चरित्र को जो अपने में उतार सकता है, तुलसीदास की दृष्टि में वही गुरु बनने का अधिकारी है। 'गुरु को शंकर के समान होना चाहिए'- तुलसीदास का ऐसा विचार एक तरह से गुरु के लिए निकष के समान है। जो इस कसौटी पर खरा उतर जाए तुलसीदास की दृष्टि में वही गुरु है, स्वीकार्य है, वन्द्य है। जो नकली साबित हो जाए वह गुरु नहीं है, निन्द्य है, तत्काल त्याग देने के योग्य है। कुछ-कुछ अलौकिक एवं मिथकीय- सा लगने वाला तुलसीदास का गुरु विषयक उपर्युक्त वर्णन इस भाव-भूमि पर आकर नितान्त लौकिक और यथार्थ साबित हो जाता है तथा आज के समकालीन यथार्थ से जुड़ जाता है। यह वर्णन अपने कर्तव्य से च्युत हुए और हो रहे गुरुओं को उनकी कितनी ऊँचाई है, उनकी कितनी महत्ता है, उनका कैसा स्वर्णिम अतीत है- यह जानकारी दे रहा है तो दूसरी तरफ उनकी साम्प्रतिक अवस्थिति का भी कच्चा-चिट्ठा खोल रहा है। तुलसीदास की गुरु-विषयक इस अवधारणा के आलोक में आज के शिक्षक अपने को वर्गीकृत कर सकते हैं कि वे गुरु हैं, गुरुघण्टाल हैं या कि उस्ताद हैं?

***

गुरुतत्त्व : बोध

श्री विष्णु प्रभाकर*

गुरुदेवपरो मन्त्रो गुरुदेवपरो जपः।
गुरुदेवपरा विद्या नास्ति किञ्चित् गुरुं विना॥
(गुरु-गीता 18वाँ श्लोक)

ज्ञान को उसके असीम प्रवाह को मनुष्य के मन बुद्धि को उतार देने की क्षमता जिस तत्त्व में होता है उसकी ही संज्ञा गुरु है। इस संसार में मनुष्य ही एक ऐसा प्राणी है जो अपने सुख-दुख के शब्दों में व्यक्त कर सकता है। जीवन के पूर्ण विकास के लिए और लोककल्याण के लिए जिस प्रेरणा और प्रसार की आवश्यकता होती है गुरु उसके धारक होते हैं। आत्मा पर लोक-परलोक की जो छाया पड़ती है उसका परिष्कार ही गुरु करते हैं। दूसरे शब्दों में गुरु मुक्ति का मार्ग खोलने वाले प्राधिकरण है।

देवताओं के बाद यदि मानव-कल्याण में भारतीय-परंपरा में किसी व्यक्ति-विशेष का विशेष स्थान है तो गुरु का है। माता-पिता जन्म देने में सहायक हैं, तो गुरु संसार का वैभव प्रदान करने के साथ-साथ पारलौकिक दिव्य शक्तियों को देने में समर्थ हैं। गुरु की महिमा का इस बात से आकलन किया जा सकता है कि भारतीय ग्रन्थों में माता-पिता के बाद गुरु का ही महत्त्व बतलाया गया है। वेद-व्यास कहते हैं :- ''मातृदेवो भव। पितृदेवो भव। आचार्य देवो भव।'' संस्कृत के विद्वान यास्क ने गुरु को आचार्य कहा है। ''आचार्यः आचारं ग्राहयति आचिनोति'' अर्थात् अपने आचरण से शिष्यों को जो प्रेरित करें, वही आचार्य कहलाता है।

गुरु शब्द भी 'यु' और 'रु' दो अक्षरों के बोधक अर्थ का धारक है। 'गु' शब्द का अर्थ अन्धकार और 'रु' शब्द का अर्थ निरोधक है। दूसरे शब्दों में जो शिष्य के अज्ञान को मिटाकर ज्ञान का प्रकाश प्रकाशित करे वही गुरु है। गुरु गीता के शब्दों में:-

'गु' शब्दस्त्अन्नधकारोऽस्ति
'रु' शब्दस्तन्निरोधकः।
अन्धकार निरोधित्वाद्
गुरुरित्यभिधीयते॥''

गुरु शब्द अपने आप में महानतम शब्द है। जो कुलीन, शीलवान, ज्ञानी और वेदशास्त्र का तत्त्वज्ञ हो, उसे गुरु कहते हैं :-

विशुद्धदेशकुलजः शीलाचारसमन्वितः।
वेदशास्त्रार्थतत्त्वज्ञो ज्ञानवान् गुरुरुच्यते॥''

श्रीकुलार्णव-महातंत्र में गुरुगीता उपदिष्ट है। भारतीय सांस्कृतिक परिवेश में जहाँ भी

*शोधछात्र, संस्कृत विभाग, पटना विश्वविद्यालय, पटना। क्षेत्र प्रमुख, भारत संस्कृत परिषद्, पटना, बिहार, मो. नं.: 7488859198

गुरु-विद्यादाता, असत्य से सत्य की ओर ले जानेवाला अज्ञानरुपी अन्धकार से प्रकाशमय ज्ञान की ओर ले जाने वाले के रूप में वर्णन मिलता है, वह गुरुगीता के उक्त वचनों से ही विस्तारित होता है।

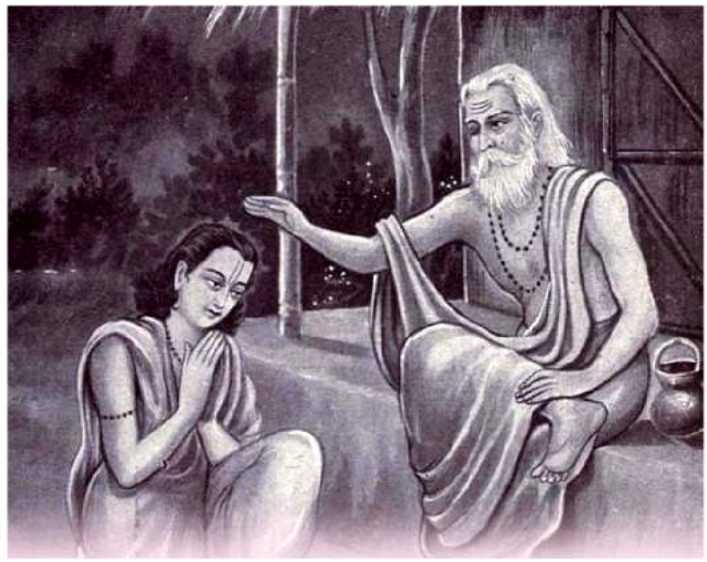

अज्ञानतिमरान्धस्य
ज्ञानाञ्जनशलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन
तस्मै श्री गुरवे नमः॥

भारतीय संस्कृति में गुरु को ब्रह्मा, विष्णु और महेश मानकर नमन किया गया है। ब्रह्मा सृष्टिकर्त्ता, विष्णु सृष्टि के स्वामी और महेश प्रलयाधीश हैं। गुरु तत्त्व से बड़ा कोई गूढ़ तत्त्व इस चराचर ब्रह्माण्ड में नहीं है। गुरु महिमा के सन्दर्भ में गुरुगीता का अद्वितीय स्थान है:-

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुः साक्षात् परब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः॥

सद्गुरु ब्रह्मा की भाँति अपने शिष्यों के हृदय में भक्ति, ज्ञानादिक परमार्थिक संस्कारों, लोक कल्याणकारी व्यवहारिक विचारों और सत्वगुणी प्रवृतियों की सर्जना करते हैं, विष्णु की तरह शुभ विचारों एवं संस्कारों की रक्षा तथा शंकर की तरह शिष्यों की कुवृत्तियों, अशुभ संस्कारों और अन्तर्विकारों का संहार करते हैं। गुरुगीता में कहा गया है :-

अखण्ड मंडलाकारं व्याप्तं येन चराचरम्।
तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्री गुरवे नमः॥

गुरु की महिमा का वर्णन करते समय गुरुगीता के निम्न श्लोक का उद्धरण मिलता है :-

ध्यानमूलं गुरो मूर्तिः, पूजा मूलं गुरोः पदम्।
शास्त्रमूलं गुरोर्वाक्यं मोक्षमूलं गुरोः कृपा।

वास्तव में देखा जाये तो साधक साधनाकाल में संसार का विस्मरण जैसे-जैसे करता जाता है तथा ईश्वरीय अनुराग में भावाविह्वल हो जाता है तब उसमें ध्यान की स्थिति आरंभ हो जाती है। इसलिए गुरु को उपर्युक्त श्लोक में ध्यान का मूल कहा गया है। भारतीय संस्कृति में धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन चारों पुरुषार्थ मानव जीवन के लक्ष्यों के रूप में निर्धारित है। इनका अधिगम गुरु द्वारा ही संभव है।

गुरुगीता का सांस्कृतिक महत्त्व अद्वितीय है। भारतीय संस्कृति में गुरु का अतीव पूज्यस्थान मिला है तो उसमें गुरुगीता का ही योगदान है। इसलिए गुरुगीता में उपलब्ध श्लोक स्मरणीय, अनुकरणीय, विचारणीय तथा अत्यन्त उपादेयात्मक है।

इति शुभम्

***

अध्यात्म-रामायण से

राम-कथा

-आचार्य सीताराम चतुर्वेदी की लेखनी से
महावीर मन्दिर द्वारा प्रकाशित

(यह हमारा सौभाग्य रहा है कि देश के अप्रतिम विद्वान् आचार्य सीताराम चतुर्वेदी हमारे यहाँ अतिथिदेव के रूप में करीब ढाई वर्ष रहे और हमारे आग्रह पर उन्होंने समग्र वाल्मीकि रामायण का हिन्दी अनुवाद अपने जीवन के अन्तिम दशक (80 से 85 वर्ष की उम्र) में किया वे 88 वर्ष की आयु में दिवंगत हुए। उन्होंने अपने बहुत-सारे ग्रन्थ महावीर मन्दिर प्रकाशन को प्रकाशनार्थ सौंप गये। उनकी कालजयी कृति रामायण-कथा हमने उनके जीवन-काल में ही छापी थी। उसी ग्रन्थ से अध्यात्म-रामायण की कथा हम क्रमशः प्रकाशित कर रहे हैं।)

अरण्यकाण्ड

विराध-वध

अगले दिन अत्रिमुनिकी आज्ञा लेकर राम उनके दो शिष्योंके साथ वनकी ओर चल दिए। एक कोस (13 किलोमीटर)-पर एक नदी पार करनेको नावपर चढ़ाकर शिष्य लौट आए। पार जाकर डेढ योजन (19 किलो मीटर) जानेपर भयंकर जंगल में एक तालका जल पीकर वे बैठे ही थे कि देखा एक भयानक राक्षस गर्जन करता हुआ बड़ा-सा बर्छा लिए चला आ रहा है जिसमें बहुतसे मनुष्य विधे हुए थे। वह बहुतसे जंगली हाथी, सिंह और भैंसोंको खाता चला आ रहा था। रामको देखते ही उसने शूल उठाकर कहा- मेरा नाम विराध है। यदि तुम्हें जान प्यारी हो तो इस स्त्री (सीता) को छोड़कर यहाँसे भाग जाओ नहीं तो मैं तुम दोनोंको अभी खाए डालता हूँ। यह कहकर वह ज्योंही आगे बढ़ा कि रामने अपने बाणसे उसकी भुजाएँ काट डालीं। जब वह मुख फाड़ कर उनकी ओर दौड़ा तब रामने उसके दोनों पैर काट डाले। फिर भी विराध सर्पके समान आगे सरकता ही रहा। तब रामने एक अर्धचन्द्राकार बाणसे उसका सिर भी काट गिराया। तत्काल वह विराध सुन्दर रूप धारण करके रामकी स्तुति करने लगा कि मैं विद्याध र हूँ। आपने मुझे दुर्वासाके शापसे मुक्त कर दिया। मैं देवलोक जा रहा हैं। रामने भी उसे वर दिया कि तू मेरी भक्तिसे सम्पन्न है इसलिये तू परम धाम चला जा।

राक्षसोंके विनाशके लिये रामकी प्रतिज्ञा

आगे चलकर वे शरभंग मुनिके आश्रममें जा पहुँचे जो राम, लक्ष्मण, सीताका सत्कार करके अपना सारा पुण्य-फल रामको समर्पित करके चितापर जा चढ़े और साक्षात् ब्रह्मलोक चले गए। वहाँसे अन्य मुनियोंको साथ लेकर

सबके आश्रमों में घूमते हुए उन्होंने एक स्थानपर बहुत-सी खोपड़ियाँ पड़ी देखीं। पूछनेपर मुनियोंने बताया कि ये उन ऋषियोंकी खोपड़ियाँ हैं जिन्हें राक्षस खा गए हैं । तत्काल रामने प्रतिज्ञा की कि मैं इन सब राक्षसोंका वध करके ही चैन लूंगा।

प्रतिज्ञामकरोद्रामो वधायाशेषरक्षसाम् ।

मुनियोंके साथ वहाँ कुछ वर्ष रहकर वे अगस्त्यके शिष्य सुतीक्ष्ण मुनिके आश्रममें पहुँचकर उनसे बोले कि मैं तुम्हारे गुरु अगस्त्य -जीसे मिलना चाहता हूँ। एक दिन वहाँ ठहरकर अगले दिन प्रातःकाल सुतीक्ष्ण मनिके साथ वे अगस्त्यके छोटे भाई अग्निजिह्व मुनिके आश्रमकी ओर चल दिए।

अगस्त्यजीसे भेंट

अगस्त्यजीके छोटे भाई अग्निजिह्वने उनका बड़ा सत्कार किया और अगले दिन प्रातःकाल वे अगस्त्य मुनिके आश्रमकी ओर चल दिए। सतीक्ष्ण मुनिसे रामके आनेकी सूचना पाकर जब अगस्त्य उनकी अगवानीके लिये आए तब उन्हें देखते ही राम, सीता और लक्ष्मणने उन्हें झुककर प्रणाम किया। अगस्त्यजी उन्हें अपने आश्रममें लिवाते. लाए और बोले कि आज आपके आनेसे मेरे सारे यज्ञ सफल हो गए हैं। आप सदा सीता-सहित मेरे हृदय में निवास कीजिए जिससे मुझे चलते-फिरते सदा आपका स्मरण बना रहे।

अगस्त्यजीने इन्द्रका दिया हुआ धनुष, बाणोंसे भरे हुए और कभी न रीतनेवाले दो तूणीर और एक रत्नजटित खड्ग देते हुए रामसे कहालीजिए, इनसे आप राक्षसोंका संहार कीजिएगा। यहाँसे दो योजन (26 किलीमीटर) की दूरीपर गौतमी (गोदावरी) नदीके तटपर आप पञ्चवटीमें आश्रम बनाकर सुखसे जा रहिए।

जटायुसे भेंट

पंचवटीकी ओर जाते हुए मार्गमें रामने देखा कि सक बड़ा भारी गिद्ध बैठा हुआ है। उन्होंने लक्ष्मणसे कहा कि जान पड़ता है यह भी कोई राक्षस है। मेरा धनुष लाओ, मैं इसे अभी मारे डालता हूँ। यह सुनकर उस गिद्धने कहा-मैं तुम्हारे पिताका मित्र जटायु हूँ। तुम लोग यहाँ सुखसे रहो। जब लक्ष्मण भी आखेट के लिये चले जाया करेंगे तब मैं सीताकी रक्षा किया करूँगा। यह सुनकर रामने बढ़कर जटायुको गले लगाया और गौतमी (गोदावरी) के तटपर विशाल पर्णकुटी बनाकर सुखसे रहने लगे। वहीं एक दिन लक्ष्मणके पूछनेपर रामते उन्हें मोक्षका स्वरूप और साधन सब कुछ बता दिया ।

शूर्पणखाके नाक-कान कटे

उन दिनों उस वनमें जनस्थानकी रहनेवाली एक कामरूपिणी राक्षसी करती थी। एक दिन पंचवटीके पास गौतमीके तटपर रामके पर मोहित होकर वह रामके पास आकर उनका परिचय पूछने लगी। उसने यह भी बताया कि मैं राक्षसराज महात्मा रावणकी बहिन लापणी राक्षसी शूर्पणखा हैं और इस वन में अपने भाई खरके साथ मुनियोंको खाती हुई यहीं रहती हूँ। अपना परिचय देते हुए रामने कहा कि मैं अयोध्यापति राजा दशरथका पुत्र हूँ। ये मेरी पत्नी सीता हैं और साथमें मेरा छोटा भाई लक्ष्मण है। बताओ, मैं तुम्हारा क्या कार्य करूँ? शूर्पणखा बोली-चलो, किसी पर्वतकी गुफामें चलकर मेरे साथ रमण करो। रामने कहा कि मेरी तो यह पत्नी

सेवा में लीन लक्ष्मण, 1830 ई. में निर्मित काँगड़ा शैली की पेंटिंग, स्रोत : www. archive.org.

विद्यमान है। बाहर मेरा छोटा भाई लक्ष्मण है, तुम चाहो तो उसके साथ विहार कर सकती हो। जब शूर्पणखाने यही बात लक्ष्मणसे कही तब लक्ष्मणने उसे समझाया- साध्वी! मैं तो रामका दास हूँ। मुझे पति बनानेसे तुम भी दासी बन जाओगी। इसलिये तुम उन्हींके पास चली जाओ। यह सुनकर वह क्रोधपूर्वक रामके पास आकर बोली-शतुम मुझे क्यों इधर उधर दौड़ा रहे हो? मैं अभी तुम्हारे सामने इस सीताको खाए डालती हूँ। यह कहकर ज्यों ही वह विकट रूप धारण करके सीताकी ओर झपटी त्यों ही रामकी आज्ञासे लक्ष्मणने उसे पकड़कर झट उसके नाक-कान काट डाले। तब तो वह रक्तसे लथपथ होकर खरके सामने जा रोई। खरने सुनते ही चौदह हजार राक्षस रामको मारनेके लिये भेज दिए और खर, दूषण और त्रिशिरा भी अनेक अस्त्र-शस्त्र लेकर रामकी ओर चल पड़े। उनका कोलाहल सुनकर रामने लक्ष्मणसे कहा कि तुम सीताको लेकर गुफामें जा ठहरो। मैं इन सबको अभी मारे डालता हूँ। इधर लक्ष्मण तो सीताको लेकर गुफामें चले, उधर रामने खर, दूषण और त्रिशिरा-सहित सब राक्षसोंको जब आधे पहर में ही ढेर कर डाला तब सीताको लेकर लक्ष्मण भी बाहर निकल आए।

रावणके पास शूर्पणखा पहुँची

उन सब राक्षसोंके मारे जानेपर शूर्पणखा दौड़ी रावणके पास लंका जा पहुँची और कहने लगी कि तुम बड़े प्रमादी एवं मूर्ख हो, मदिरा पीकर पड़े रहते हो। युद्ध में खर, दूषण और त्रिशिरा-सहित चौदह सहस्र राक्षसोंको रामने क्षण भरमें मार डाला। इतना सब कुछ हो चुकनेपर भी तुम्हारे कानपर जूतक न रेंगी।

पूछनेपर शूर्पणखाने कहा कि मैं तो उनकी सुन्दरी पत्नीको तुम्हारे लिये लानेका प्रयत्न कर रही थी कि रामके भाई लक्ष्मणने मेरे नाककान

काट डाले । जब खर सेना लेकर उनसे लड़ने गया तब रामने उन सबको भी मार डाला। यदि उसकी पत्नी सीता तुम्हारी भार्या हो जाय तो तुम्हारा जीवन सफल हो जाय ।

यह सुनकर शूर्पणखाको धैर्य बँधाकर वह अपने अन्तःपुरमें जाकर सोचने लगा कि केवल मनुष्य मात्र रामने मेरे भाई खरको सेना-सहित कैसे मार डाला ? जान पड़ता है राम मनुष्य नहीं है। साक्षात् परमात्माने रामके रूप में अवतार लिया है। उनके हाथों मरकर तो मैं वैकुण्ठमें पहुँच जाऊँगा । इसलिये मैं रामके पास विरोध-बुद्धिसे ही चला चलता हूँ।

मारीचके पास रावण पहुँचा

अगले दिन अंधेरे मुंह गदहोंसे जुते हुए रथपर चढ़कर रावण समुद्रके पार मारीचके पास जा पहुँचा जो जटा-वल्कल धारण करके भगवानका ध्यान कर रहा था। रावणने उसे शूर्पणखाका सारा वृत्तान्त बताकर कहा कि अब मैं तुम्हारी सहायतासे रामकी पत्नी सीताको हर लाना चाहता हूँ। तुम मायामृग बनकर जब राम-लक्ष्मणको आश्रमसे दूर खींच ले जाओगे तभी मैं सीताको हर ले आऊँगा।

मारीचने विस्मित होकर पूछा कि यह सर्वनाशकारी उपाय तुम्हारे मस्तिष्कमें किसने डाल दिया है। देखो, जबसे उन्होंने अपने एक वाणसे मुझे यहाँ सौ योजन दूर समुद्र-तटपर उछाल फेंका है तबसे मुझे दिन-रात चारों ओर राम ही राम दिखाई पड़ते हैं। एक बार मैं अपने पुराने वैरको स्मरण करके जब दण्डकारण्य में अन्य मगोंके साथ मग बनकर अपने तीखे सींगोंसे उन्हें मारनेके लिये झपटा तब उन्होंने ऐसा बाण चलाया कि मैं आकाशमें चक्कर काटता हुआ समुद्र में आ गिरा। मेरे मन में उनके नामका ऐसा भय समाया हुआ है कि राज, रत्न, रमणी रथ, आदि र से प्रारम्भ होनेवाले शब्द ही सुनकर मेरी सिट्टी-पिट्टी गुम हो जाती है, मैं भयसे काँप उठता हूँ। इसलिये तुम भी चुपचाप कान दबाकर घर लौट जाओ। रावणने उससे कहा कि यदि परमात्मा ही राम होकर मनुष्य रूपसे यहाँ चले आए हैं तब तो मैं यत्नपूर्वक उनके पाससे सीताको हर ले आऊँगा । यदि मैं उनके हाथसे मारा गया तब तो परम पद मेरी मुट्ठीमें आया धरा है और यदि मैंने हो रामको मार डाला तब तो सीता मेरी हो ही जायगी। तुम झटपट मृग बनकर राम-लक्ष्मणको आश्रमसे दूर हटा ले जाओ। यदि कुछ भी और बोले तो तुम्हें यहीं मारकर ढेर कर डालूंगा। मारीचने मनमें सोचा कि यदि मैं रामके हाथों मारा गया तब तो मुक्त हो जाऊँगा और यदि इस दुष्टने मुझे मार डाला तब तो मुझे नरक भोगना ही पड़ेगा। यह सोचकर वह रावणके रथपर ही चढ़कर पञ्चवटी जा. पहँचा और चाँदीकी-सी बंदकियोंवाले शुद्ध सुवर्णके वर्णका मृग बनकर रामके आश्रम के पास सीताके सामने जा घूमने लगा।

सीता-हरण

राम तो रावणका सारा कुचक्र ताड़ ही चुके थे। एक दिन उन्होंने एकान्तमें सीतासे कहा-देखो, एक दिन रावण तुम्हारे पास भिखारीका रूप बनाकर आवेगा। इसलिये तुम अपने ही समान अपनी छाया कुटीमें छोड़कर अग्निमें प्रवेश कर जाओ और एक वर्षतक अदृश्य रूपसे अग्निमें ही छिपी पड़ी रहो। रावणके मारे जानेपर तुम फिर मेरे पास आ जाओगी। तदनुसार सीताने मायामयी सीता तो कुटीमें बना छोड़ी और वे स्वय अग्निमें अदृश्य हो गई।

उस माया-सीताने वहाँ घूमते हुए मायामृग मारीचको देखते ही रामसे कहा-आर्यपुत्र! इसे पकड़ लाइए। मैं इसके साथ खेला करूंगी। लक्ष्मणको सीताकी रक्षाका भार सौंपकर राम हरिणके पीछे लग चले। लक्ष्मणने टोका भी कि यह मृगके रूप में मारीच आया है; क्योंकि मृग ऐसा कहाँ होता है। पर रामने कहा कि यदि यह मारीच है, तब तो मैं इसे मार ही डालूँगा और यदि मृग होगा तो उसे सीताके लिये पकड़ता लाऊँगा। तुम सावधानीसे सीताकी रखवाली करते रहना। ये कहकर रामने जब उस मृगका पीछा किया तब वह कभी तो पास दिखाई देता, कभी क्षणभरमें दूर निकलकर जा छिपता। इस प्रकार वह उसका पीछा करते हुए रामको बहुत दूर निकाल ले गया। उसे मारीच जानकर रामने एक बाण मारकर मार गिराया और वह राक्षस भी रामकी-सी बोली में यह कहता हुआ जा गिरा-'हे महाबाहो लक्ष्मण! मैं मारा गया, मेरी शीघ्र रक्षा करो।' मरते समय मारीचका तेज राममें आ समाया। राम सोचने लगे कि इस राक्षसने मरते समय मेरे ही स्वरमें 'हा! लक्ष्मण' कहकर प्राण छोड़े हैं। इसे सुनकर सीनाकी क्या दशा हुई होगी? यह सोचते हुए वे वेगसे लौट पड़े।

इधर सीताने जब मारीचके शब्द सुने तब उन्होंने लक्ष्मणसे कहा कि झटपट जाओ, तुम्हारे भाईको राक्षस कष्ट दिए डाल रहे हैं। लक्ष्मणने उन्हें बहुत समझाया कि यह स्वर रामका नहीं है, किसो राक्षसने उसी स्वरमें यह कहा है। भला राम क्या कभी ऐसे दीन वचन बोल सकते हैं? सीताने लक्ष्मणको डाँटते हुए कहा कि तू अपने भाईको विपत्तिमें पड़ा देखना चाहता है। जान पड़ता है तुझे रामका नाश चाहनेवाले भरतने सिखा भेजा है। क्या तू रामके नष्ट होनेपर मुझे हर ले जाने चला आया है? किन्तु तू मुझे क्या पा सकेगा? देख, मैं अभी प्राण दिए डालती हूँ। राम नहीं जानते कि तू उनकी पत्नीका हरण करनेपर तुला हुआ है। रामके अतिरिक्त मैं भरतको या तुझे किसीको छू-तक नहीं सकती। यह कहकर वे माती पीट-पीटकर रोने लगीं। लक्ष्मणने दुखी होकर अपने कान मूंदकर 'चण्डी! तुम्हें धिक्कार है। तुम क्यों ऐसा कह रही हो? इससे तम नष्ट हो जाओगी।' यह कहकर सीताको वन-देवियोंके हाथ सौपकर लक्ष्मण धीरे-धीरे रामकी ओर चल पड़े।

इसी बीच रावण भिखारीका वेश बनाकर दण्ड-कमण्डल लिए सीताके पास आ पहँचा। सीताने तुरन्त प्रणाम करके उसे कन्द-मूल-फल देते हुए कहा- यह फल लेकर विश्राम कीजिए। थोड़ी ही देर में मेरे पति आए जाते हैं, वे आपका विशेष सत्कार कर सकेंगे। रावणने परिचय पूछा तो सीताने कहा- मैं अयोध्या-नरेश महाराज दशरथके पुत्र रामकी धर्मपत्नी सीता हैं। उनका छोटा भाई लक्ष्मण मेरा देवर है। पिताकी आज्ञासे राम चौदह वर्षके लिये दण्डकारण्य में आए हुए हैं । तब अपना परिबय देते हुए रावणने कहा- मैं पुलस्त्यनन्दन विश्रवाका पुत्र राक्षसराज रावण हूँ। मैं तुम्हें अपनी राजधानी लिवा ले चलने के लिये आया हुआ हूँ। उस मुनिवेशधारी रामसे भला तुम्हें क्या मिलनेवाला है? तुम मुझसे प्रेम करने लगोगी तो वनवासके सारे दु:खोंसे छूट जाओगी।

यह सुनकर तो सीता काँप गईं। किन्तु साहस बटोरकर वे बोलीदेख, यदि तू ऐसी बातें बकेगा तो राम तुझे अभी ढेर कर डालेंगे। तू

ठहरा रह, वे अभी अभी अपने भाईके साथ आ ही रहे होंगे। क्या सिंहकी पत्नी को कोई खरहा उठा ले जा सकता है ? तू देखता रह । अभी रामके बाणोंसे तेरा सिर धरतीपर लोटता दिखाई देगा। -यह सुनते ही रावणने दस मुंह और बीस भुजाओंवाला अपना पर्वताकार रूप बना दिखाया। उसने झट पृथ्वीको नखोंसे खोदकर साताको अपने हाथोंपर उठा थामा और उन्हें रथमें डालकर तुरन्त आकाशमार्गसे उड़ चला।

अब तो सीता हा राम! हा लक्ष्मण! पुकार-पुकारकर लगीं रोने-चिल्लाने। उनकी पुकार सुनते ही जटायुके कान खड़े हुए। उसने बाहर निकलकर रावणको ललकारा कि चोरके समान पुरोडाश ले जानेवाले कुत्ते! तू मेरे सामने ही रामकी भार्याको लिए चला जा रहा है? यह कहकर उसने देखते-देखते रावणका रथ चूर-चूर कर डाला और उसके गधोंको मारकर उसके धनुषके भी टुकड़े-टुकड़े कर डाले। इसपर खीझकर रावणने झट अपनी तलवार खींच निकाली और जटायुके पंख काट डाले। पंख कटते ही जटायु अध मरा होकर धरतीपर आ गिरा। रावणने झट सीताको दूसरे रथपर ले जा बैठाया और वहाँसे चलता बना। सीताका विलाप सुन-सुनकर रामके आने की आशंकासे रावण और भी तीव्र वेगसे भाग चला। आकाश-मार्गसे जाते हुए सीताने देखा कि एक पर्वत-शिखरपर पाँच वानर बैठे हुए हैं। उन्हें देखते ही सीताने यह सोचकर अपने कुछ आभूषण दुपट्टे के पल्लेमें बाँधकर उस पर्वतपर उठा फेंके कि कौन जाने ये ही रामको मेरा समाचार कह सुनावें।

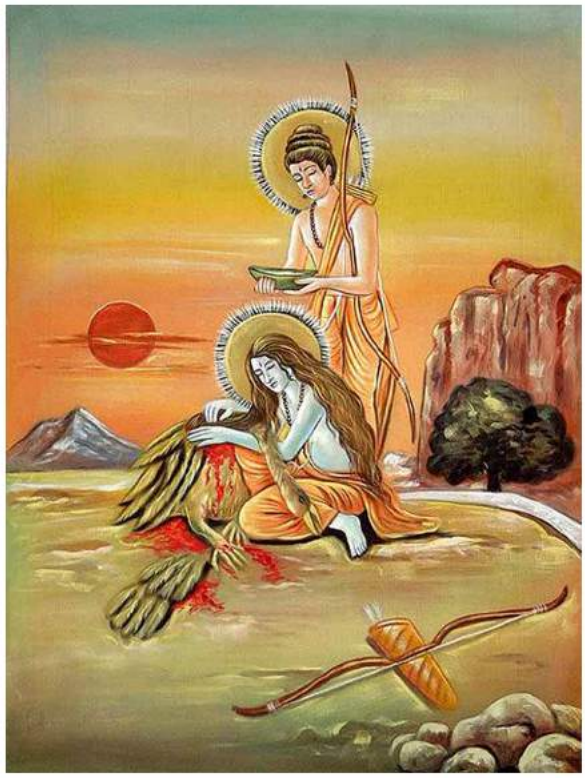

रावणने समुद्र पार करके लंकामें पहुँचकर सीताको अपने अन्त:पुरके अशोक-वनमें ले जा रक्खा और उन्हें राक्षसियोंसे घेरे रखकर मातृबुद्धिसे उनकी रक्षा करने लगा। सीता भी वहाँ 'हा राम! हा राम!' रट-रटकर रोती हुई राक्षसियोंके बीच रहने लगीं।

सूनी पर्णकुटी

मायावी मारीचको मारकर जब राम अपने आश्रमकी ओर लौटे चले आ रहे थे तब उन्होंने दूरसे ही देखा कि लक्ष्मण मुंह लटकाए चले आ रहे हैं। राम मनही मन सोचने लगे- लक्ष्मण तो जानते नहीं हैं कि मैंने मायामयी सीता बना धरी है। अत: अब मैं साधारण मनुष्यके समान शोकका प्रदर्शन करने लगूंगा और रावणको मारकर अग्निमंच स्थापित

सीताको लेकर अयोध्या लौट चलूँगा। पास आनेपर उन्होंने लक्ष्मणसे पूछा- अरे! सीताको छोड़कर तुम यहाँ कैसे चले आए? उन्हें या तो राक्षस हर ले गए होंगे या मारकर खा गए होंगे। लक्ष्मणने उन्हें सारी घटना कह सुनाई कि सीताने मुझे क्या ऊँच-नीच नहीं कह डाला था। राम लक्ष्मण जब झपटे हुए आश्रममें पहुँचे तब देखा कि सीता वहाँ कहीं नहीं हैं। तब तो राम बहुत दुखी होकर विलाप करने लगे और जहाँ तहाँ घूम-घूमकर उन्हें ढूंढने लगे। बीच में टूटे हुए रथ, धनुष और रथके कूबरको देखकर राम कहने लगे कि बस, यहीं आकर कोई उन्हें हर ले गया है। फिर आगे पर्वत-सदश जटायुको लहूसे लथपथ देखकर वे कहने लगे-बस, यही सीताको खाकर तृप्त हुआ पड़ा सो रहा है। इस निशाचरको मैं अभी मारे डालता हूँ। रामके वचन सुनकर जटायुने सारी कथा उन्हें कह सुनाई कि कैसे मेरे पंख काटकर सीताको रावण दक्षिणकी ओर लेता चला गया है। बड़ा भाग्य है कि अन्त समय में आपका दर्शन हो गया। अब आप अपने कर-कमलोंसे मुझे स्पर्श कर दीजिए। रामने ज्यों ही अपने कर-कमलोंसे उसे छुआ त्यों ही उसने दम तोड़ दिया और दिव्य रूप धारण करके स्वर्ग चला गया। लक्ष्मणसे लकड़ियाँ मँगवाकर रामने विधिवत् उसका दाहकर्म कर दिया।

कबन्ध-वध

सीताको खोजते हुए राम और लक्ष्मण जब दूसरे वनकी ओरको चले तब वे देखते क्या हैं कि सामने एक राक्षस आया बैठा है जिसकी छातीमें ही बड़ा-सा मुख है, जिसके न तो नेत्र हैं, न कान हैं और जिसकी भुजाएँ एक एक योजन (13 किलोमीटर) लम्बी हैं। राम-लक्ष्मणने समझ लिया कि हम लोग कबन्ध राक्षसकी भुजाओंमें आ फँसे हैं। तत्काल रामने उसकी दाईं भुजा और लक्ष्मणने बाईं भुजा काट गिराई। जब पूछनेपर रामने अपना परिचय दिया तब कबन्धने कहा कि यदि आप राम हैं तो मैं धन्य हो गया। पहले यौवनमें मैं बड़ा मदमत्त गन्धर्वराज था और मैंने तपस्याके बलपर ब्रह्मासे अवध्य होनेका वर प्राप्त कर लिया था। एक बार अष्टावक्रको देखकर मैं ज्यों ही हँसा कि उन्होंने मुझे राक्षस होनेका शाप दे दिया। पर दया करके कहा कि त्रेता-युगमें जब भगवान् अवतार लेकर तेरी भुजाएँ काट डालेंगे तब तेरा उद्धार हो जायगा। एक बार जब मैं क्रोधपूर्वक इन्द्रकी ओर दौड़ा तब उन्होंने ऐसा वज्र मारा कि मेरे सिर और पैर पेटमें तो जा धंसे किन्तु ब्रह्माके वरके कारण मैं मर नहीं पाया। मझे मुखहीन देखकर इन्द्रने कहा- जा, तेरे पेटमें ही मुख रहेगा और तेरी भुजाएँ एक-एक योजन लम्बी हो जायेंगी। अब आप मुझे अग्नि और ईंधनसे भरे गड्ढे में डाल दीजिए। अग्निसे जलनेपर मैं पूर्व रूप धारण करके आपकी भार्याके मिलने का उपाय बता दूंगा।

रामके कहनेसे लक्ष्मणने तुरन्त गड्ढा खोदकर उसमें उसे डालकर लकड़ियोंसे जला दिया। कबन्ध तुरन्त कामदेवके समान सुन्दर होकर हाथ जोड़कर रामकी स्तुति करने लगा। रामने कहा-मैं तुम्हारी भक्ति और स्तुतिसे प्रसन्न हूँ। तुम मेरे सनातन परम धामको चले जाओ।

शबरीके आश्रममें

परम धाम जाते हुए उस गन्धर्वने बताया कि सामनेवाले आश्रममें रहनेवाली शबरी आपको सीताके सम्बधमें सब कुछ बता देगी। शबरीके आश्रममें पहुँचनेपर उसने रामका बड़ा स्वागत

किया और उन्हें अमृतके समान दिव्य फल ला खिलाए। फिर वह हाथ जोड़कर कहने लगी कि मैं यहाँ अपने गुरु महर्षि मतंगकी सेवा करती हुई बहुत समयसे रहती चली आ रही हूँ। ब्रह्मलोक जाते समय उन्होंने मुझसे कहा था कि यहाँ शीघ्र भगवान ही राम रूपसे अवतार लेकर आनेवाले हैं। आजवल वे चित्रकूट पर हैं। तुम उनका दर्शन पाकर परम धाम चली जाना। तब शबरीने रामको बताया कि सीताको रावण लंकामें हर ले गया है। पास ही पम्पा सरोवरके समीप ऋष्यमूक पर्वतपर वानरराज सुग्रीव अपने भाई बालीके भयसे अपने चार मंत्रियोंके साथ रहता है। शापके कारण बाली वहाँ नहीं आ पा सकता, इसलिये आप वहाँ जाकर सुग्रीवसे मित्रता कर लीजिए। वह आपकी पूरी सहायता करेगा। मैं आपके सामने ही अग्निमें प्रवेश करके जबतक परमधाम नहीं चली जाती, तबतक आप यहीं ठहरे रहें। तत्काल शबरीने अग्निमें प्रवेश करके मोक्ष प्राप्त कर लिया।

अरण्यकांड पूर्ण

***

शबरी के आश्रम में श्रीराम एवं लक्ष्मण। महावीर मन्दिर में प्रथम तल पर गर्भगृह में स्थापित प्रतिमाएँ।

गंगा और भारत

डा. (प्रो.) रामविलास चौधरी

"पुरातन काल से लेकर आधुनिक काल में भी न केवल भारत में, अपितु विदेशों में भी बसे हिन्दुओं के मन में गंगा के प्रति अपार श्रद्धा एवं भक्ति विराजमान है। प्रत्येक पूजा-पाठ एवं शुभकार्यों में गंगाजल का उपयोग अनिवार्य रूप से होता है।"

भारतीय चिन्तनधारा में नदियों का महत्त्व आदि काल से ही बहुत रहा है। सामान्यत: 'जल ही जीवन है' के साथ खेती-बाड़ी के लिए भी नदी-जल पर निर्भरता नितान्त रूप में देखी जाती है, किन्तु आर्यावर्त में पुण्यसलिला नदी के जल का महत्त्व धार्मिक दृष्टि से भी अनिवार्य रूप से दृष्टिगत होता है। यहाँ पवित्र नदियों के जल को बिना किसी भी पूजा-पाठ एवं यज्ञ के सम्पादन की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। इन धार्मिक एवं नित्य-नैमित्तिक कर्मों के आरम्भ में ही पुण्यप्रदा नदियों का आवाहन किया जाता है। इसके लिए मन्त्र है-

गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति।
नर्मदे सिन्धु कावेरि जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु॥

इस मन्त्र में भारत के पूरब से पश्चिम तथा उत्तर से दक्षिण तक की सभी प्रमुख नदियों को सम्मिलित किया गया है जो भारतीय एकता को सुदृढ करने में प्रशंसनीय विवरण है। उपर्युक्त मन्त्र में सर्वप्रथम गंगा का उल्लेख है जो हिमालय में गंगोत्री से प्रवाहित होकर उत्तराखण्ड, उत्तर प्रदेश, बिहार, झारखण्ड तथा बंगाल की समतल भूमि को उर्वर बनाने के साथ समस्त हिन्दू जाति की धार्मिक आस्था को आदिकाल से लेकर आज तक अनुप्राणित करती रही है। यही कारण है कि विश्व साहित्य के प्राचीनतम ग्रंथ के रूप में ख्याति प्राप्त 'ऋग्वेद' के नदी-सूक्त में यमुना, सरस्वती एवं शुतुद्री नदियों के साथ सर्वप्रथम गंगा का ही उल्लेख है जो इस प्रकार है-

इमं मे गङ्गे यमुने सरस्वति शुतुद्रि स्तोमं सचता परुष्ण्या।
असिक्न्या मरुद्वृधे वितस्तयाऽर्जीकीये शृणुह्या सुषोमया॥

ऋग्वेद-10-75.5

यहाँ ऋषि गंगा एवं यमुना आदि इन सात पवित्र नदियों को अपना (ऋषिका) स्तोत्र स्वीकार करने के लिए निवेदन करते हैं।

गंगा से आर्यों का अविनाभाव सम्बन्ध वैदिक काल से है। अतः परवर्ती काल में गंगा की महिमा का इतना अधिक वर्णन किया गया है कि भारत की कल्पना गंगा के विना सम्भव नहीं।

कुछ चिन्तकों की मान्यता है कि भारतीय संस्कृति के चार स्तम्भ हैं और वे हैं- गो, गायत्री, गीता और गंगा। इनमें गंगा सभी धर्मों के व्यक्ति के लिए पूजनीय नदी भी हो तब भी अनेक दृष्टियों से सर्वजनोपकारिणी तो प्रत्यक्ष रूप में अवश्य है। इसमें किसी विवाद के लिए अवकाश ही नहीं है।

अस्तु, भारतीय साहित्य में आदिकवि के रूप में ख्यातिप्राप्त महर्षि वाल्मीकि आदि काव्य 'रामायण' की रचना के साथ 'श्रीगङ्गाष्टकम्' शीर्षक स्तोत्र में गंगा से अपने को अपृथक् करने की प्रार्थना करते हुए कहते हैं- हे गंगे! आपसे अलग होकर मदमत्त गजराजों के जमघट के घण्टारव से भयभीत हुई शत्रु-महिलाओं से स्तुत पृथ्वीपति होने से ज्यादा अच्छा है कि आपके तटवर्ती तरुवर के कोटर में पक्षी बनकर मैं निवास करूँ तथा आपके आर-पार रहनेवाले जन्म-मरण के क्लेश को सहन न करनेवाले कोई बैल, पक्षी, घोड़ा, सर्प अथवा हाथी होना मुझे स्वीकार है, किन्तु किसी अन्य स्थान पर कंणों की सुमधुर ध्वनि से युक्त चमर हुला रही वाराङ्गनाओं से सेवित राजा होना मुझे मंजूर नहीं है-

त्वत्तीरे तरुकोटरान्तरगतो गङ्गे विहङ्गो वरं
त्वन्नीरे नरकान्तकारिणि वरं मत्स्योऽथवा कच्छपः।
नैवान्यत्र मदान्धसिन्धुरघटा सङ्घट्टघण्टारण-
त्कारत्रस्तसमस्तवैरिवनितालब्धस्तुतिर्भूयतिः॥

वाल्मीकिरचितं गंगाष्टकम्-2

उपर्युक्त श्लोक की छाया हिन्दी के प्रसिद्ध कवि रसखान को सनैया में देखी जाती है, जहाँ कृष्ण की भक्ति में रमे हुए वे कहते हैं-

मानुष हौं तो वहीं- रसरवान वसौं व्रज गोकुल गाँव के ग्वालन।
जौं पशु हो तो कहा बस मेरो चरौं नित नन्द के धेनु मझारन।
पाहन हौं तो वही गिरि को जो धर्यो कर छत्र पुरन्दर धारन।
जौं खग हौं तो वसरो करौं नित कालिन्दी कूल कदम्ब के डारन॥

आगे वे वाल्मीकि कालकलंक को नष्ट करनेवाली जाह्नवी से अपने (वाल्मीकि) को पवित्र करने की प्रार्थना करते हैं-

अभिनवविसवल्ली पाद पद्मस्य विष्णो-
र्मदनमथनमौलेर्मालतीपुष्पमाला ।
जयति जयपताका काप्यसौ मोक्षलक्ष्म्याः
क्षपितकलिकलङ्का जाह्नवी नः पुनातु॥5॥

इसी तरह श्रीशंकराचार्य का श्रीगंगास्तोत्रम् बहुत ही ललित, मनोरम और लयपूर्ण तथा लोक-प्रचलित है। वहाँ वे गंगा से प्रार्थना करते हैं कि हे भगवति! तुम त्रिभुवन को तारनेवाली, विमल और तरल तरंगमयी है। शंकर के मस्तक पर विहार करनेवाली हो। हे मातः तुम्हारे चरण कमलों में मेरी मति लगी रहे-

देवि सुरेश्वरि भगवति गङ्गे त्रिभुवनतारिणी तरलतरङ्गे।
शङ्करमौलिविहारिणि विमले मम मतिरास्तां तव पदकमले॥

इसी क्रम में आगे वे कहते हैं- हे देयामयि, दान दुःखियों की वन्दनीया गंगे, तुम अलकापुरी का आनन्द इस संसार में ही देती हो तथा परमानन्दमयी हो। जो तुम्हारे निकट निवास करता हैए उसे वैकुण्ठवास का सुख मिलता है-

अलकानन्दे परमानन्दे कुरु करुणामयि कातरवन्द्ये।
तव तट निकटे पस्य निवासः खलु वैकुण्ठे तस्य निवासः॥

जो भावना व्यक्त की है कुछ तरह का भक्तिभाव व्यक्त करते हुए अतुलित प्रतिभा से विभूषित श्रीशंकराचार्य गंगा से निवेदन करते हैं कि तुम से दूर कुलीन एवं महान् राजा होने से अधिक रुचिकर या बेहतर है- तुम्हारे जल में कछुआ या मछली रूप में रहना, तुम्हारे तट पर दुबला-पतला गिरगिट बनकर रहना या अति मलिन दीन चाण्डाल कुल में जन्म लेकर तुम्हारे पर निवास करना-

वरमिह नीरे कमठो मीनः किं वा तीरे शरटः क्षीणः।
अथवा श्वपयो मलिनो दीनस्तव नहि दूरे नृपति कुलीनः॥

संस्कृत साहित्य के नभोमण्डल में 17वीं शती में एक ऐसे अद्वितीय प्रतिभासम्पन्न नक्षत्र का उदय हुआ, जिसने एक ओर अलंकारशास्त्र के निरूपण ग्रन्थ के रूप में प्रख्यातनामा 'रसगंगाधर' की रचना की तो दूसरी ओर अत्यन्त सरस सुकोमल और कान्त पदावती से युक्त भक्तिपूर्ण स्तोत्रकाव्यों की रचना द्वारा सहृदयहृदय को चमत्कृत कर दिया। ऐसा अनुपम व्यक्तित्व संस्कृत जगत् में पण्डितराज जगन्नाथ के नाम से विख्यात हुआ।

इनके स्तोत्रकाव्य के रूप में पाँच लहरी-ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं। वे हैं- करुणालहरी, सुधालहरी, अमृतलहरी, लक्ष्मीलहरी और पीयूषलहरी या गंगालहरी।

गंगालहरी में भगवती भागीरथी की भावपूर्ण स्तुति की गई है। ये पद्य अत्यन्त मधुर और आह्लादपूर्ण हैं। प्रसिद्धि है कि दिल्ली के बादशाह शाहजहाँ की सभा को विभूषित करनेवाले पण्डितराज जगन्नाथ को यवन सुन्दरी के साथ विवाह रचाने के कारण अप्पय दीक्षित आदि पण्डितों ने जाति से बहिष्कृत कर दिया था। इससे क्षुब्ध पण्डितराज अपना शरणागत बना लेने के लिए 'गंगालहरी' के पद्यों से उनको स्तुति करने लगे। उन पद्यों में एक अत्यन्त भावपूर्ण पद्य अद्योलिखित है-

सुरवरमुनिकन्ये तारयेः पुण्यवन्तं
स तरति निजप्रयत्नैस्तत्र किन्ते महत्त्वम्।

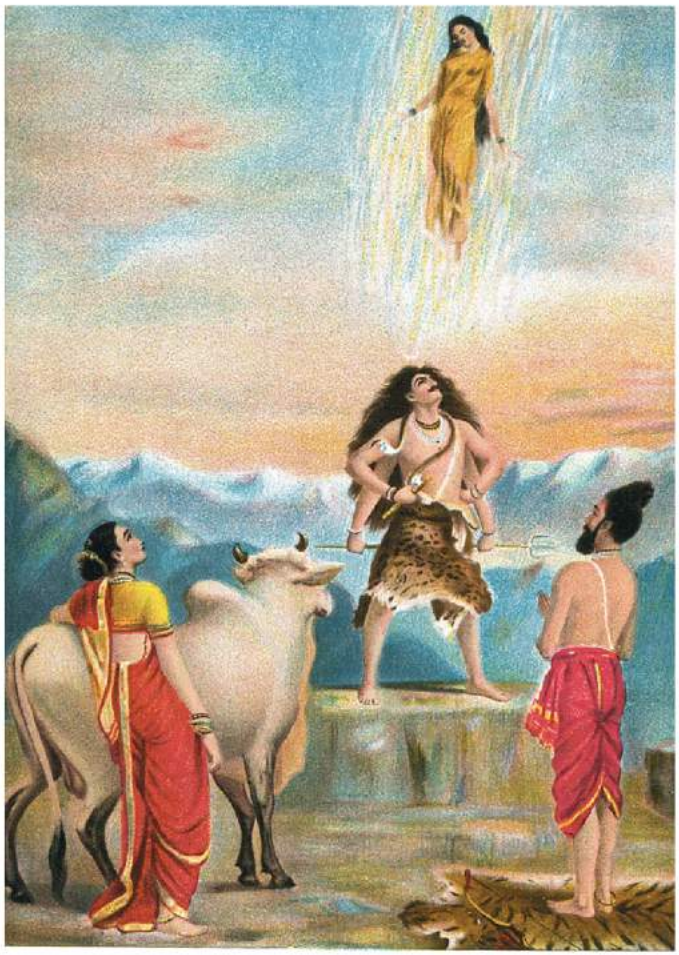

यदिह यवनजातिं पायिनं मां पुनीहि
तदिह तव महत्त्वं तन्महत्त्वं महत्त्वम्॥

इससे प्रभावित एवं प्रसन्न होकर गंगा ने उन्हें अपने अंक में समाहित कर लिया।

संस्कृत नाट्य साहित्य के महान् कवि विशाखदत्त द्वारा रचित प्रसिद्ध नाटक 'मुद्राराक्षस' के आरम्भ में गंगा को महादेव के सिर पर विराजमान देखकर ईर्ष्यावश पार्वती और शंकर के बीच इस प्रकार संवाद होता है-

पार्वती- 'हे शंकर आपके सिर पर कौन सौभाग्यशालिनी विराज रही है?'

शंकर- 'चन्द्रमा की कला।'

पार्वती- 'क्या इसका यही नाम है?'

शंकर- 'हाँ, इसका यही नाम तुम्हारा तो परिचित है। किस कारण से तुम इसे भूल गई हो।'

पार्वती- मैं उस स्त्री के बारे में पूछ रही हूँ, चन्द्रमा के बारे में नहीं।

शंकर- यदि मेरे कथन पर विश्वास नहीं है, तो अपनी सखी विजया से पूछ लो।

आगे विशाखदत्त कहते हैं कि पार्वती से गंगा को छिपाने के इच्छुक शंकरजी की चतुरता आप पाठकों एवं दर्शकों की रक्षा करे। वह आशीर्वादात्मक मंगलश्लोक इस प्रकार है-

धन्या केयं स्थिता ते शिरसि शशिकला किन्नु नामैतदस्याः
नामैवास्यास्तदेतत्परिचितमपि ते विस्मृतं कस्य हेतोः
नारीं पृच्छामि नेन्दुं कथयतु विजया न प्रमाणं यदीन्दु
र्देव्या निह्नोतुमिच्छोरिति सुरसरितं शाठ्यमव्याद्विभोर्वः॥

यहाँ गंगा को पार्वती की सपत्नी के रूप में वर्णित किया गया है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि पुरातन काल से लेकर आधुनिक काल में भी न केवल भारत में, अपितु विदेशों में भी बसे हिन्दुओं के मन में गंगा के प्रति अपार श्रद्धा एवं भक्ति विराजमान है। प्रत्येक पूजा-पाठ एवं शुभकार्यों में गंगाजल का उपयोग अनिवार्य रूप से होता है।

यह भी कहा जाता है कि गंगाजल को किसी पात्र में बन्द कर बहुत दिनों तक रखने के बावजूद उसमें विकृति नहीं आती है, जबकि अन्य नदियों तथा तालाब आदि का जल विकृत हो जाता है। अत: कुछ लोग गंगाजल को अविकृत एवं पवित्र मानकर आजीवन उसी जल का उपयोग पीने तथा स्नान आदि में करते हैं।

दूसरी ओर यहाँ भी दृष्टिगत होता है कि गंगा के प्रति अतिशय श्रद्धा के कारण पूजा-पाठ, श्राद्ध, उपनयन, विवाह तथा अन्त्येष्टि संस्कार आदि आयोजनों के अवशिष्ट वस्तुओं को गंगा में डाल दिया जाता है। गंगा नदी के दोनों तटों पर बसने वाली बड़ी आबादी भी शौच के लिए उन्हींका आश्रय लेती हैं। इतना ही नहीं, गंगा के किनारे बसे शहरों की गन्दी नालियाँ गंगा की ही आरे अभिमुख रहती हैं। इसी तरह गंगा तट पर स्थापित कारखानों के दूषित जल और अपसृष्ट वस्तुएँ भी गंगा का रुख करती हैं। रासायनिक शृंगार एवं सज्जा से भरी दुर्गा, काली, सरस्वती एवं गणेश आदि देवताओं के मूर्ति-पूजन के बाद उन मूर्त्तियों को गंगा के जल में प्रवाहित करने में हम तत्पर रहते हैं। इन कारणों से गंगा का जल अत्यन्त दूषित हो गया है तथा उसका तल भी तेजी से उत्थल होता रहा है, जिससे गंगा में पानी की मात्रा दिनानुदिन घटती जा रही है। अत: उसका दायरा भी सिमटता जा रहा है गर्मी के दिनों में कहीं कहीं गंगाजल के लिए तो बहुत दूर जाना पड़ता है, जिससे उसके सूख जाने की आशंका होने लगती है।

गंगा की इस चिन्तनीय स्थिति से अवगत भारत सरकार एवं अनेक स्वयंसेवी संस्थाएँ गंगा के सुद्धार के प्रति प्रयासरत हैं। कई बार विभिन्न सरकारों ने इस सन्दर्भ में अनेक परियोजनाएँ बनाई। इसमें अरबो-अरब रुपये व्यय किये गये, किन्तु अब तक कुछ ठोस परिणाम सामने नहीं आये। वर्तमान सरकार के कई मन्त्री 'नमामि गंगे' परियोजना की सफलता के लिए कृतसंल्प हैं, किन्तु जबतक जनसाधारण इस ओर पूरे तन-मन से तत्पर नहीं होगा इसमें सफलता संदिग्ध ही है। अत: निकट भविष्य में आशा की ज्योति दृष्टिगत नहीं हो रही है। यह अत्यन्त विडम्बनापूर्ण स्थिति है कि जिस 'गंगाजल-लव-कणिका' के पान से प्राणियों का उद्धार हो जाता है, यमराज भी उसका कुछ नहीं बिगाड़ पाते, वही गंगा आज अपने उद्धार के लिए पर मुखापेक्षी है।

इति शम्

***

हिन्दी-वाङ्मय में नदीश्वरी गंगा

डॉ. जितेन्द्रकुमार सिंह 'संजय'*

भारतीय संस्कृति में गंगा का अति विशिष्ट स्थान है। भारतीय जनजीवन में गंगा रची-बसी हैं। यदि गंगा को भारत-शरीर की नाड़ी कहा जाय, तो कोई अत्युक्ति नहीं। पुराणों में गंगावतरण के अनेक आख्यान हैं। इन आख्यानों का सम्बन्ध किसी-न-किसी रूप में त्रिदेवों से है। वस्तुतः भारतीय धर्माध्यात्म के प्रत्येक आयाम त्रिदेवों से सम्पृक्त हैं और स्वयं त्रिदेव भगवती गंगा से। तत्त्वतः गंगा त्रिदेवों का समन्वित रूप हैं। विष्णुपदाम्बुज-निःसृता होने के कारण गंगा विष्णुपदी हैं। ब्रह्मा ने उस विष्णुपादोदक को कमण्डलु में रखा इसलिए गंगा को ब्रह्मकमण्डलुवासिनी कहा गया। शिव ने गंगा को सिर पर धारण किया इसलिए उन्हें गंगाधर कहा गया और गंगा शिव-शिखर की मालती माला कही गयीं। गंगा केवल त्रिदेवों से ही सम्पृक्त नहीं हैं, इनका सम्बन्ध त्रिभुवन से भी है। आकाशपथगामिनी होकर वे मन्दाकिनी हुईं। पातालप्रवाहिनी होकर उन्होंने भोगवती नाम धारण किया और मर्त्यलोक में अयोध्या के सूर्यवंशी सम्राट् भगीरथ द्वारा लायी जाने के कारण भागीरथी संज्ञा से अलंकृत हुईं। धरानभपातालप्रवाहिता होने के कारण ही गंगा का त्रिपथगा नाम चरितार्थ हुआ। हिमालय से निकलने के कारण हिमालय-पुत्री कहलायीं। शिव-पत्नी पार्वती की तरह गंगा भी पर्वत-पुत्री होने के कारण पार्वती हैं। इसलिए दोनों ही शिवप्रिया हैं। पर्वतराज सुमेरु की पुत्री मनोरमा इनकी माता हैं। वस्तुतः गंगा सुरलोकनिवासिनी थीं इसलिए इन्हें सुरापगा कहा गया। सगुण साकार ब्रह्म के नराकार रूप से पृथक् नीराकार रूप का प्रतिनिधित्व करने के कारण गंगा नदीश्वरी हैं। ब्रह्मवैवर्तपुराण के अनुसार शिव के नृत्य से द्रवीभूत होकर प्रवाहित ब्रह्मद्रव ही गंगा है-

योऽसौ निरञ्जनो देवश्चित्स्वरूपी जनार्दनः।
स एव द्रवरूपेण गङ्गाम्भो नात्र संशयः॥

गोस्वामी तुलसीदास ने भी गंगा का वर्णन करते हुए ऐसा ही कहा है-

ब्रह्म जो व्यापक बेद कहैं गम नाहिं गिरा गुन ज्ञान गुनी को।
जो करता भरता हरता सुरसाहिब साहिब दीन दुनी को।
सोई भयो द्रवरूप सही जु है नाथ बिरंचि महेस मुनी को।
मान प्रतीति सदा तुलसी जल काहे न सेवत देवधुनी को॥

– कवितावली 7/146

*सचिव, प्रभाश्री ग्रामोदय सेवा आश्रम, देवगढ़, शिवद्वार- 231 210, सोनभद्र (उ.प्र.)। मो.नं. : 06306770753, 09473614545, ईमेल : drjkssanjay@gmail.com, drjkssanjay@yahoo.in

जिसको वेद व्यापक ब्रह्म बतलाते हैं, जिसके गुण जानने और गिनने की गति गिरा (वाणी, सरस्वती) को भी नहीं प्राप्त है; जो कर्ता, भर्ता और हर्ता है, देवताओं का राजा और दीन-दुनिया का साहेब (मालिक) है, वह पानी के रूप में बहता है, जो ब्रह्म, महेश और मुनियों का नाथ है, हे तुलसी! विश्वास करके क्यों नहीं उस गंगाजल का लोग सेवन करते?

पुराणों में नदीश्वरी गंगा के दर्शन-पूजन, आचमन, स्नानादि के पुण्यफल का विस्तारपूर्वक वर्णन है। विशेष तिथि, दिन, मास, पर्व, ग्रहण आदि के अवसर पर गंगास्नान का अत्यधिक माहात्म्य है। ऋग्वेद में वर्णित दस प्रधान नदियों की पंक्तिपावन परम्परा में गंगा प्रथम गणनीय हैं-

इमं मे गङ्गे यमुने सरस्वति शुतुद्रि स्तोम सचता परुष्ण्या।
असिक्न्या मरुद्वृधे वितस्तयार्जीकीये शृणुह्यासुषोमया॥ - ऋग्वेद 1/75/5

आचार्य यास्क ने निरुक्त में इन नामों की निरुक्ति भी की है-

गङ्गा गमनात्। यमुना प्रभुवती गच्छतीति वा विप्रयुतं गच्छतीति वा। सरस्वती सर इत्युदकनाम सर्त्तेः तद्वती। शुतुद्री शुद्राविणी क्षिप्रद्राविणी आशुतुन्नेव द्रवतीति वा। इरावती परुष्णीत्याहुः पर्ववती भास्वती कुटिलगामिनी। असिक्ती अशुक्लाऽसिता सितमिति वर्णनाम तत्प्रतिषेधोऽसितम। मरुद्वृधा सर्वानद्यः मरुत एनावर्द्धयन्ति। वितस्ता विदग्धा विवृद्धा महाकूला। आर्जीकीया विपाडित्याहुः ऋजुकप्रभावा वा ऋजुगामिनी। विपाट् विपाटनाद्वा विपाशनाद्वा विप्रापणाद् वा पाशा अस्यां व्यपास्यन्त वशिष्ठस्य मुमूर्षतस्तस्माद्विपाडुच्युते पूर्वमासीदुरुं जिरा। सुषोमा सिन्धुर्यदेनामभिषुवन्ति सिन्धुः स्यन्दनात्। - निरुक्त 9/26

गंगा का सर्वाधिक वर्णन पुराणों में ही प्राप्त होता है। गंगा के लेखा-जोखा में उनका धार्मिक महात्म्य सर्वोपरि है। ऐहिक और आमुष्मिक अभ्युदय और निःश्रेयस् की सिद्धि में ही गंगा का विनियोग होता रहा है। गंगा-माहात्म्य इतना अधिक है कि 'गंगा' शब्द ही नदीवाचक हो गया। हिमालय में असंख्य गंगाएँ हैं। दक्षिण की नदियों के नाम में भी 'गंगा' शब्द सम्पृक्त करने की प्राक्तन परम्परा है। कावेरी को 'कावेरीगंगा' और नर्मदा को 'नर्मदागंगा' कहकर भारतीयों ने गंगा की लोकव्याप्ति का परिचय दिया है। भारत की धार्मिक एकता के स्रोत अनादि हैं। श्रावणी आदि पर्वों के पुनीत अवसर पर देश भर के पर्वतों और उनसे निःसृत होनेवाली सरिताओं के नामस्मरण का संकल्प-पाठ दुहराया जाता है। जिस प्रकार सरिताओं के नाम के साथ गंगा की परम्परा सम्पृक्त है, उसी प्रकार उत्तर-दक्षिण के तीर्थों के नाम में भी ऐक्यभाव की कल्पना की गयी है। उत्तर में काशी है तो दक्षिण में काञ्ची। उत्तर में मथुरा है तो दक्षिण में मदुरा (मदुरै)। उत्तर-दक्षिण के इसी ऐक्यभाव ने दक्षिण के देवालयों में प्रतिष्ठित देवताओं को गंगाजल से अभिषिक्त करने की परम्परा का प्रवर्तन किया। भक्तों के अनेक चरिताख्यानों में रामेश्वरम् में गंगाजल से अभिषेक करने का वृतान्त सुरक्षित है। गोस्वामी तुलसीदास ने स्वयं लिखा है-

जो गंगाजल आनि चढ़ाइअ। सो सायुज्य मुक्ति नर पाइअ॥

संस्कृत वाङ्मय में गंगा-माहात्म्य और गंगास्तुति का विशाल भाण्डागार तो है ही, हिन्दी आदि भाषाओं में भी भक्तिकाल आते आते गंगा की प्रतिष्ठा अपने चरम पर पहुँच गयी थी। कालान्तर में पण्डितराज जगन्नाथ की 'गङ्गालहरी' में शिखरिणी का जो सौन्दर्य मुखरित हुआ, उसकी पूर्वपीठिका तुलसी-वाङ्मय में ही बन गयी थी। गोस्वामी तुलसीदास कहते हैं- हे गंगे! आपका जल ब्रह्मस्वरूप है; विष्णु के चरणों से उत्पन्न होने के कारण यदि मैं आपको अपने पैरों से स्पर्श करूँगा तो मैं पापी बनूँगा। शिवजी के समान मैं आपको सिर पर धारण करने में भी डरता हूँ, क्योंकि प्रभु की बराबरी करने के

भारी पाप से गल जाऊँगा। चाहे मुझे बार बार शरीर धारण करना पड़े पर मैं रामजी का होकर आपके तट पर रहूँगा। हे गंगे! मैं हाथ जोड़कर प्रार्थना करता हूँ कि मैं वही बात कहूँगा, जिससे मुझे फिर दोष न लगे। तथा-

बारि तिहारो निहारि मुरारि भये परसे पद पाप लहौंगो।
ईस ह्वै सीस धरौं पै डरौं, प्रभु की समता बड़ दोष दहौंगो।
बरु बारहिं बार सरीर धरौं, रघुबीर को ह्वै तव तीर रहौंगो।
भागीरथी! बिनवौं करजोरि, बहोरि न खोरि लगे सो कहौंगो॥

– कवितावली 7/147

तुलसी जैसी ही अवधारणा रहीम की भी है। गंगा में स्नान करनेवाला विष्णु भी होता है और शिव भी। विष्णु होने पर उसके चरणों से गंगा प्रवाहित होती हैं और शिव होने से वह उन्हें सिर पर धारण करता है। रहीम का गंगा के प्रति अभ्यर्थनामूलक अभिलाष है कि मुझे विष्णु मत बनाना शिव ही बनाना। विष्णु बनने पर पैरों से स्पर्श होने से पूज्यभाव नहीं रहेगा। शिव होने पर सिर पर रहोगी, अतः मैं तुम्हें शिरोधार्य करना चाहता हूँ-

अच्युतचरनतरंगिनी, सिवसिरमालतिमाल।
हरि न बनायो सुरसरी, कीजौ इन्दवभाल॥– रहीम-दोहावली, दोहा सं. 1

तुलसी और रहीम का गंगा के प्रति अनन्य भाव है। यह भाव पद्माकर की 'गंगालहरी' से रत्नाकर के 'गंगावतरण' तक विद्यमान है। गंगा के प्रति हिन्दी-कवियों की सनातनी आस्था संस्कृत की चिरकृतज्ञ है। हिन्दी-कवियों ने पतितपावनी पापनाशिनी गंगा का मनोरम चित्रण किया है। गंगा के प्रति अपनी आस्था का प्रसून समर्पित करते हुए रसखान लिखते हैं-

बैद की औषध खाउँ कछू न करौं ब्रत संजम री सुन मो से।
तेरोइ पानि पियौं रसखानि सजीवन लाभ लहौं सुख तो से।
एरी सुधामयी भागीरथी! कोउ पथ्य कुपथ्य करै तऊ पोसे।
आक धतूरैं चबात फिरैं बिष खात फिरैं सिव तेरे भरोसे॥

– सुजान रसखान, छन्द सं. 255

गंगा अमृतद्रव हैं इसलिए धतूरे क्या, विष का भी प्रभाव नष्ट कर देता है। सर्पविष से प्रभावित को सैकड़ों घड़ों से नहलाने की प्राक्तन परम्परा रही है। शिव के मस्तक पर चन्द्रमा के साथ विद्यमान गंगा की छटा को वाणी प्रदान करते हुए महाकवि पद्माकर ने सम्पूर्ण सृष्टि को एक ही मनहरण में बाँध दिया है-

कूरम पै कोल कोल हू पै सेष-कुण्डली है,
कुण्डली पै फबी फैल सुफन हजार की।
कहै 'पदमाकर' त्यों फन पै फबी है भूमि,
भूमि पै फबी है थिति रजत-पहार की।
रजत-पहार पर सम्भु सुरनायक हैं,
सम्भु पर ज्योति जटाजूट है अपार की।
सम्भु-जटाजूटन पै चन्द की छुटी है छटा,
चन्द की छटान पै छटा है गंग-धार की॥ – गंगालहरी, छन्द सं. 3

रीतिकाल की समृद्ध परम्परा के मध्यभक्ति के शाश्वत छन्द रचने की प्रेरणा गंगा ही दे सकती हैं। भारतीय जनमानस की आस्था गंगा की चटुल तरंगों से मुक्ति के गीत गाती है। गंगा की लहरें अपने कलकल निनाद से एक ऐसे मन्त्र का महोच्चार करती हैं, जिसकी ध्वनि न केवल वातावरण को पवित्र बनाती है, अपितु जीवन जीने की कला भी सिखाती है। भौगोलिक दृष्टि से देखें तो भूमण्डल के जिस कटिबन्ध में गंगा हैं, उस भूवलय में सर्वत्र केवल मरुभूमि ही मरुभूमि है, किन्तु भारत में गंगा अपनी सहायक स्रोतस्विनी सरिताओं सहित जो वेदिका निर्मित करती हैं, वह पृथ्वी का सर्वाधिक उपजाऊ प्रदेश है। गंगाजल में कीट नहीं पड़ते। अर्वाचीन अनुसन्धानों एवं वैज्ञानिक विश्लेषणों से भी सिद्ध हो चुका है कि गंगाजल में कीटनाशक तत्त्व विद्यमान हैं। पर्वतप्रदेश की न जाने कितनी जीवनदायिनी ओषधियाँ गंगाजल में घुली हुई हैं। हिमालय की जिन ओषधियों का दर्शन भी दुर्लभ है, उनका अर्क भारतवासियों को गंगा की कृपा से सहज सुलभ है। गंगाजल का स्पर्श करके न जाने कितने दीन-दु:खी तर गये। गंगा के इस धार्मिक माहात्म्य को महाकवि पद्माकर ने एक अनूठी शैली में प्रकट किया है-

जमपुर द्वारे लगे तिन में किवारे, कोऊ
हैं न रखवारे ऐसे वन के उजारे हैं।
कहै 'पदमाकर' तिहारे प्रन धारे तेउ,
करि अघ भारे सुरलोक को सिधारे हैं।
सुजन सुखारे करे पुन्य उजियारे अति,
पतित-कतारे भवसिन्धु तें उतारे हैं।
काहू ने न तारे तिन्हैं गंगा तुम तारे, और
जेते तुम तारे तेते नभ में न तारे हैं॥ - गंगालहरी, छन्द सं. 10

महाकवि पद्माकर कृत 'गंगालहरी' के बाद सीतापुर जनपद के गन्धौली ग्राम-निवासी पण्डित नन्दकिशोर मिश्र 'लेखराज' ने 1878 ई. (1935 वि. सं.) में 'गंगाभरण' नामक लक्षणग्रन्थ का प्रणयन किया। ग्रन्थ-रचना की तिथि का उल्लेख ग्रन्थान्त में किया गया है-

गंगेशानन गंग मग, निधि दीन्हें शशि गंग।
गंगागति गनि अंक की, संवत् लिखहु सुढंग॥
मास पक्ष तिथि बार गुरु, कै उमंग कहि गंग।
गंगा गंगाभरण को, जन्म भयो एक संग॥

- गंगाभरण, छन्द सं. 358-359

कविशिरोमणि लेखराज के पौत्र पण्डित कृष्णबिहारी मिश्र ने उपर्युक्त दोहे की व्याख्या करते हुए लिखा है- 'गंगेशानन महादेव पंचवक्त्र प्रसिद्ध हैं, गंग मग अर्थात् गंगाजी त्रिपथगामिनी हैं, निधि नव हैं और शशि एक है इस प्रकार 5391 हुआ, परन्तु आगे कहते हैं कि गंगा गति गनि अर्थात् गंगा की गति सीधी नहीं है यहाँ उल्टी से अभिप्राय है अंकगणना में नियम भी है 'अङ्कानां वामतो गति:' अत: 5391 की गणना वाम ओर से होगी इस कारण 1935 हुआ यही पुस्तक-रचना का संवत् है।' (गंगाभरण, भूमिका, पृ. 1-2)।

कविवर लेखराजजी की गंगा के प्रति अनन्य भक्ति थी। उन्होंने अपने जीवन के अन्तिम चरण में केवल गंगाजल का ही पान किया। गंगाजल की प्रशंसा करते हुए उन्होंने लिखा है-

शैलन टारि बिदारि गुहा कल शब्द निसारि कढ़ो झनकारि है।
शीस पुरारि बिहारि हरी पद धूरिहि धारि सबै गुनगारि है।
याहि बिचारि पुकारि कहै 'लेखराज' सदा हिय धारि निहारि है।
पापन पारि है दासन तारि है गंग को बारि है सो सुखकारि है॥

– गंगाभरण, छन्द सं. 2

गंगाभरण एक ऐसा लक्षणग्रन्थ है, जिसमें समस्त उदाहरण गंगा पर घटित होते हैं। गंगा को लक्ष्य करके भ्रान्तिमान अलंकार का उदाहरण देते हुए लेखराज जी लिखते हैं-

गंगाजी के तीर तहाँ मरो एक पापी महाँ,
'लेखराज' देखी या अलेखी ताकी सिधि है।
छूटत शरीर यमभीर भाजी धीर धरि,
पीर करि आयी घिरि तीर नवौ निधि है।
नाची नाची फिरति घृताची माची धूम धाम,
सकल सकाम सुर बाम लरै गिधि है।
देव देवरानी भ्रमि भवजू भवानी कहै,
रमा चक्रपानी कहै बानी कहै विधि है॥ – गंगाभरण, छन्द सं. 41

कविवर लेखराज के पश्चात् हिन्दी-कविता में गंगा की कीर्ति-कथा का अवतरण ब्रजभाषा के सिद्धकवि बाबू जगन्नाथदास 'रत्नाकर' ने किया। महाकवि रत्नाकरजी सच्चे अर्थों में महाकवि पद्माकर के उत्तराधिकारी थे। रत्नाकर जी ने पद्माकर की तरह घनाक्षरी में 'गंगालहरी' का प्रणयन तो किया ही, 'गंगावतरण' नामक प्रबन्धकाव्य भी लिखा। 'गंगावतरण' जहाँ कथाप्रधान है, वहीं 'गंगालहरी' वर्णनप्रधान। दोनों रचनाएँ भगवती गंगा का गुणानुवाद करती हैं। गंगावतरण के मंगलाचरण में रत्नाकर जी लिखते हैं-

जय बिधि-संचित-सुकृत-सार-सुख-सागर-संगिनि।
जय हरि-पद-अरविन्द-मंजु-मकरन्द-तरंगिनि॥
जय सुर-सेवित-सम्भु-बिपुल-बल-बिक्रम-साका।
जय भूपति-कुल-कलस-भगीरथ-पुन्य-पताका॥
जय गंग सकल-कलि-मल-हरनि बिमल-बरनि बानी करौ।
निज महि-अवतरन-चरित्र के भव्य भाव उर मैं भरौ॥

– गंगावतरण छन्द सं. 1

गंगावतरण की रचना सन् 1927 ई. में हुई और प्रकाशन 1933 ई. में हुआ। इसमें कपिल मुनि के शाप से भस्म हुए सगर के साठ सहस्र पुत्रों के उद्धार के लिए भगीरथ के अथक प्रयास से गंगा के अवतरित होने की कथा विस्तारपूर्वक त्रयोदश सर्गों के अन्तर्गत रोला छन्द में कही गयी है। कथानक का मूल स्रोत वाल्मीकीय-रामायण है। गंगावतरण के चरित्रों में सगर धर्मनिष्ठ, अंशुमान् विनयशील, दिलीप प्रजावत्सल और भगीरथ कर्मठ हैं। 'गंगावतरण' का प्रबन्धत्व कथाधीन है, किन्तु 'गंगालहरी' में रत्नाकर जी की वर्णनचातुरी अपने चरम पर है। पद्माकर की 'गंगालहरी' और रत्नाकर की 'गंगालहरी' एक-दूसरे से स्पर्धा करती प्रतीत होती हैं। 'गंगावतरण' के मंगलाचरण का प्रथम रोला 'गंगालहरी' के घनाक्षरी में परिवर्तित होकर रत्नाकर की कवि-कीर्ति-पताका को हिन्दी-काव्यान्तरिक्ष में फहराता है-

बिधि बरदायक की सुकृति-समृद्धि-वृद्धि,
सम्भु सुरनायक की सिद्धि की सुनाका है।
कहै रतनाकर त्रिलोक-सोक नासन को,
अतुल त्रिविक्रम के विक्रम की साका है।
जम-भय-भारी-तम-तोम निरबारन काँ,
गंग यह रावरी तरंग तुंग राका है।
सगर-कुमारनि के तारन की स्रेनी सुभ,
भूपति भगीरथ के पुन्य की पताका है॥ - गंगालहरी, छन्द सं. 10

गंगालहरी से ही एक छन्द और भी द्रष्टव्य है-

आवत हीँ ध्यान मैँ बिधान तिहिँ धावन कौ,
अदृस अपावन कौ कटत करारा है।
कहै रतनाकर सु ताके सिकता मैँ चारु,
चमकत दीन पातकीन कौ सितारा है।
बाढ़ै दिन दूनौ राति चौगुनौ प्रताप ताकौ,
जाकौ बीचि-ब्यूह चलै पढ़त पहारा है।
आरा है अनूप काटिबे कौँ पाप-डारा अरु,
गंग-धुनि-धारा जम-धार कौँ दुधारा है॥ - गंगालहरी, छन्द सं. 17

महाकवि जगन्नाथदास 'रत्नाकर' के गंगा-वाङ्मय के बाद हिन्दी में गंगा विषयक तीन प्रबन्धकाव्य और भी प्राप्त होते हैं - महाकवि रामजीदास कपूर कृत 'गंगाश्रम', महाकवि डॉ. राजाराम शुक्ल कृत 'गंगायतन' एवं महाकवि डॉ. अनन्तराम मिश्र 'अनन्त' कृत 'जय जाह्नवी'। 'गंगाश्रम' में रामजीदास कपूर ने श्रम-संस्कृति की प्रतिष्ठा की है। इसमें गंगा का नीरवेश और नारीवेश दोनों ही मुखरित हुआ है। कवि ने दोनों ही रूपों में गंगा का रमणीक चित्र खींचा है। वन्दना, प्रवेश, अवतरण, रूपबोध, श्रमगंगा, त्रिपथगा, कालक्रम, हिमावर्त, जह्नु आश्रम, हृषीकेश, हरद्वार, ज्ञान-गरिमा, शुकस्थली, गढ़मुक्तेश्वर, शूकर क्षेत्र, राजघाट नरौरा, कन्नौज, कानपुर, गर्ग आश्रम, प्रयाग, वाल्मीकि आश्रम, वाराणसी, गौंसपुर, विश्वामित्र आश्रम, भृगु आश्रम, सरयू-संगम, पाटलिपुत्र, मुंगेर, बंगभूमि, सागर-संगम, आकांक्षा एवं प्रणति नामक सर्गों में विभक्त 'गंगाश्रम' की कथा गंगा के सम्पूर्ण यात्रा-परिपथ का ऐतिहासिक आख्यान प्रस्तुत करती है। घनाक्षरी छन्द में सौन्दर्य के जिन मनोहारी बिम्बों की रचना कवि ने की है, उसका कोई विकल्प नहीं। सम्राट् भगीरथ की तपस्या से प्रसन्न होकर जब गंगा धरती पर अवतरित होती हैं, उस समय का चित्रण करते हुए रामजीदास कपूर लिखते हैं-

विधि का कमण्डलु उलट महिमण्डल पे,
वायु को विदार निराधार डोलती हुई।
क्रूर कालराज के कराल कालपाश काट,
नरक-निकेतन अधर तोलती हुई।
भूपति भगीरथ के भाग्य की शलाका बन,

सुयश पयस्विनी सनाद बोलती हुई।
शेष के कलेवर-सी काटती हिमालय को,
व्योमकेश-जूट को सुखेन खोलती हुई॥ - गंगाश्रम 3/1, पृ. 7

अवतरण के समय गंगा-प्रवाह की तीव्रता को चरितार्थ करने के लिए कवि ने नवग्रहों का सादृश्य उपस्थित कर अपनी वर्णन-क्षमता का परिचय दिया है-

भौम को विलोम मन्दगति का बनाती मन्द,
रुण्डहीन राहु मुण्ड पीन नोचने लगी।
छीन सुध बुध से विपथ दिनराज कर,
शुक्र ओज अम्बक कपूर कोचने लगी।
केतु कौतुकी का केतु कुयश कलुष कील,
सुरगुरुराज की त्वचा को रोचने लगी।
चन्द्र को पलायमान जान चन्द्रमौलि पर,
गंगाधर केसरी जटा दबोचने लगी॥ - गंगाश्रम, 3/4, पृ. 9

गंगाश्रम में अलंकारों की छटा पदे पदे दृग्गत होती है। एक से इक्कीस तक की संख्या को दो छन्दों में जिस तरह से कवि ने गूँथा है, उससे न केवल संख्यालंकार की सिद्धि होती है, अपितु कवि की चमत्कृत करनेवाली काव्यकला का सहज अनुमान भी होता है-

एकलिंग-शीश पर साधती है दोनों लोक,
तीनपथगामिनी है चार फल दायिनी।
पंचवक्त्र को भी वर देती तू षडानन का,
सप्तऋषि-मण्डली की भक्ति-अनपायिनी।
अष्ट वसुओं की मातृका हो मोक्ष देती उन्हें,
नवरसवाली काव्य-प्रतिभा विधायिनी।
दशमहाविद्या में त्रिपुरसुन्दरी है गंग,
एकादश रुद्र को प्रफुल्लता प्रदायिनी॥
द्वादश-दिवाकर-प्रभा का मान मारती-सी,
सम्पति त्रयोदशी प्रदोष काल नाका-सी।
चौदहों भुवन में प्रसार पापनाशी कीर्ति,
पंचदश तम तिथियों की रम्य राका-सी।
सोलहों शृंगार साज सत्रह कला प्रसार,
पुरुष पुराण की अठारवीं पताका-सी।
भाव में उनीस नहीं, बीस गुनी भावना से,
गंग! यामदग्न्य-एकविंश-शौर्य-साकार-सी॥ - गंगाश्रम 7/6-7, पृ. 32

नदीश्वरी गंगा के तटीय प्रदेश का ऐतिहासिक सर्वेक्षण करते हुए कविवर रामजीदास कपूर जब सागर-संगम पर पहुँचते हैं, तब उनकी श्रमविषयक अवधारणा अपने उत्कर्ष को प्राप्त होती है। गंगा

नदीश्वरी हैं और समुद्र नदीश। वर्मा की इरावदी, दक्षिण अमेरिका की अमेजन, आस्ट्रेलिया की मरे, इराक की फरात, जर्मनी की राइन, युरोप की डेन्यूब एवं एल्ब, सोवियत संघ की डान एवं बोल्गा, चीन की ह्वांगहो, अमेरिका की मिसीसिपी, दक्षिण पूर्वी एशिया की मिकांग, 3रांस की सीन, इटली की पो, साइबेरिया की ओवी, मिस्र की नील, पुर्तगाल-स्पेन की टेगस, कनाडा की मेकैंजी, इंग्लैण्ड की टेम्स, भारत की नर्मदा, महानदी, गोदावरी एवं भारत-पाकिस्तान की सिन्धु आदि नदियाँ विशाल विस्तृत क्षेत्र का प्रतिनिधित्व करते हुए समुद्र में आकर मिलती हैं, किन्तु इन नदियों के समूह में एकमात्र गंगा ही नदीश्वरी हैं। केवल गंगा को ही समुद्र की पट्टमहिषी होने का गौरव प्राप्त है। इस तथ्य को रेखांकित करते हुए रामजीदास कपूर ने लिखा है-

आ गयीं इरावदी अमेजन मरे फरात,
राइन डेन्यूब डान दहल कहल में।
ह्वांगहो मिसीसिपी महानदी मिकांग सीन,
आयीं एल्ब नर्मदा पो सिन्धु भी टहल में।
गोदावरी ओवी नील टेगस मेकैंजी टेम्स,
संस्कृति विभिन्नता की चहल-पहल में।
अंक भर बोलगा को दे रही समान पद,
गंगा पट्टमहिषी नदीश के महल में॥ - गंगाश्रम 30/6, पृ. 122

नदीश्वरी गंगा को धरती पर ले आने का श्रेय सम्राट् भगीरथ को प्राप्त है। भगीरथ ने कठिन तपस्या करके इस दुःसाध्य को साध्य बनाया था। तभी से धरती पर 'भगीरथ प्रयत्न' का मुहावरा प्रवर्तित हुआ। इसी मुहावरे के आलोक में कवि ने 'गंगाश्रम' रचा है। ग्रन्थ की समाप्ति के अवसर पर कवि ने इसी भाव की प्रतिष्ठा की है-

शिरसा नमामि उस पौरुष-यतीश्वर को,
देता गंग-वारि जनहित में प्रकाम है।
उस ब्रह्मद्रव को नमन करता हूँ नित्य,
कर्म-भक्ति-ज्ञान की त्रिवेणी अभिराम है।
भूप अभिनन्दनीय करता त्रिलोक धन्य,
हरि को विरंचि को महेश को ललाम है।
श्रम को प्रणाम श्रमजीवी को प्रणाम, और
श्रम के प्रयास को भगीरथ प्रणाम है॥ - गंगाश्रम 32/2, पृ. 128

महाकवि रामजीदास कपूर कृत 'गंगाश्रम' के विपरीत महाकवि डॉ. राजाराम शुक्ल कृत 'गंगायतन' रत्नाकर कृत 'गंगावतरण' की परम्परा का प्रबन्धकाव्य है। संकल्प, अभ्युदय, दर्शन, बाहु-सगर, भगीरथ, अवतरण, छवि, संस्कृति, तीर्थ, सिन्धु एवं आशीष नामक एकादश सर्गों में 'गंगायतन' का कथानक वाल्मीकीय रामायण एवं महाभारत के आलोक में रचा गया है। कहीं कहीं कवि-स्वातन्त्र्य का परिचय देते हुए आधुनिक भावबोध की दृष्टि से परिवर्तन भी किया गया है। अवतरण सर्ग में गंगा के पुण्यप्रवाह की तरह पंचचामर छन्द की शब्दच्छटा अवतरित हुई है-

कृपालु ब्रह्म विष्णु की पवित्र शक्ति पावनी।
सुभक्ति-शक्ति-सम्पदा-सुशील-ज्ञानदायिनी॥
दयामयी-द्रवित दरिद्र-दुख-दुसह विनासिनी।
विभिन्न रूप में विराट विश्व में निवासिनी॥ - गंगायतन 6/1, पृ. 87

गंगायतन की रचना आधुनिक भावबोध के साथ हुई है। कवि ने अन्तिम सर्ग में लिखा है-

चाहे बादल की बाहों से मचली हो भूपर आने को।
चाहे पर्वत की क्रोडों से उतरी हों नीर पिलाने को॥
चाहे हिमाद्रि पर ही रह कर क्रीडा करती हों शंकर से।
या गंगा-सी बहकर जग में लड़ती त्रय ताप भयंकर से॥
जितना ही विस्तृत वैभव है जग में जीवन की धारा का।
यदि उतना ही विश्वास बढ़े मानव में भाईचारा का॥
तो धरती पर फिर सागर-सी स्थिरता-समता आ जाये।
पट जाये खाईं कटुता की आँखों में ममता छा जाये॥

- गंगायतन 11/2-4, पृ. 162-163

हिन्दी में गंगा-वाङ्मय की शृंखला का अन्तिम प्रसून महाकवि डॉ. अनन्तराम मिश्र 'अनन्त' कृत 'जय जाह्नवी' है। 'अनन्त' को हिन्दी में विधिवत् नदीकाव्य की अवतारणा का श्रेय प्राप्त है। अनन्त जी ने 'यमुना' (1983 ई.), 'नर्मदा' (1991 ई.), 'मैं कृष्णा हूँ' (1991 ई.), 'सरयू' (1991 ई.), 'ताम्रपर्णी' (1997 ई.), 'शिप्रा' (1997 ई.), 'चर्मण्वती' (1997 ई.), 'ब्रह्मपुत्र' (1997 ई.), 'जय जाह्नवी' (1997 ई.), 'सरस्वती' (2000 ई.), 'शतद्रु' (2000 ई.), 'परुष्णी' (2000 ई.), 'असिक्नी' (2000 ई.), 'वितस्ता' (2000 ई.), 'विपाशा' (2000 ई.) एवं 'सिन्धु' (2000 ई.) नामक प्रबन्ध काव्यों की रचना करके हिन्दी की नदी-काव्य-परम्परा को समृद्ध किया है। अनन्तराम मिश्र ने प्रत्येक नदी में गंगा का ही दर्शन किया है। नदीश्वरी गंगा से अपनी इस भावना को निवेदित करते हुए अनन्त जी कहते हैं-

मकरासने! तुझे शैशव में सर्व प्रथम जब देखा-
तब से मेरे उर-अन्तर में खिंची भक्ति की रेखा।
श्रेष्ठ-पवित्र न मैंने जग में और कहीं कुछ पाया-
इस कारण ले जल तेरा ही, तुझ पर अम्ब! चढ़ाया॥
माँ! मैंने प्रत्येक नदी में तुझको सदा निहारा-
और सांस्कृतिक राष्ट्रगीत ही बार बार उच्चारा।
उत्तर दक्षिण, दक्षिण उत्तर के समीप आ जाये-
सेतुमयी मेरी कविता ने यों दायित्व निभाये॥ - जय जाह्नवी 1/3-4

जय जाह्नवी में कवि ने गंगा की शाश्वत सनातन संस्कृति को वाणी प्रदान किया है। अनन्तराम मिश्र की छन्दयोजना, भाषा-प्रवाह और वर्णनात्मक क्षमता निश्चय ही प्रशंसनीय है। 'जय जाह्नवी' का छन्द-प्रबन्ध 'नैवेद्य निवेदन कर लूँ', 'यदि धरती पर तू न उतरती', 'संस्मरण सांस्कृतिक सागर तक

गोमुख से', 'माँ! तेरी आध्यात्मिक छवि', 'देवि! आधुनिकता को तू' एवं 'आकाशगंगा' नामक षष्ठ शीर्षकों में निबद्ध है। द्वितीय सर्ग में कवि ने गंगा के साक्षीभाव का स्मरण करते हुए लिखा है-

पूषणतनये! सोमसम्भवे! तेरी छवि हृद्या है-
पंच प्रयागों से अभिनन्दित अनघा-अनवद्या है।
योग-योग्य साधक को उज्ज्वल श्रेय-दृष्टि देती तू-
भोग चाहनेवाले को माँ! प्रेय-सृष्टि देती तू।
अमरापगे! तुझे यमुना, वृन्दावन कर देती है-
कोसल से आकर सरयू, रघुवंशी स्वर देती है।
निधुवन-कला-विशारद 'वाजिद' की ठुमरी-सी गाती-
चपल गोमती, तेरे अंचल में ममत्व है पाती॥ - जय जाह्नवी 2/13-14

गंगा के सामने भारतीय इतिहास के कितने पृष्ठ लिखे गये, इसका अद्यतन लेखा-जोखा सम्भव नहीं है। गंगा ने सब कुछ साक्षीभाव से देखा है। गंगा की दृष्टि इतिहास के प्रत्येक अध्याय की साक्षी है। जो ऐतिह्यपृष्ठों में प्रकट है, उसे तो गंगा ने देखा ही और जो नेपथ्य में है उसे भी देखा है। गंगा के लिए कुछ भी गोपन नहीं है। इसलिए अनन्त जी लिखते हैं-

कितने ऋषियों-मुनियों के हैं पदचिह्न युगल कूलों में-
जो पाटल-से आमोदित, कटु विषयों के शूलों में?
कितने धराधिपों ने है तुझमें इतिहास सँजोया-
शत्रु रक्त-रंजित, कराल कर-करवालों को धोया?
कितनी तरुणी राजरानियों को लघु लघु लहरों ने-
दर्पण दिखलाये पवनान्दोलन-विमुक्त पहरों ने?
कितने कवियों ने तुझ पर सर्जनाधर्मिता वारी-
दीप-काव्य के जला, वन्दना की आरती उतारी॥ - जय जाह्नवी 2/17-18

वस्तुतः गंगा की अनन्त महिमा का गुणानुवाद प्रत्येक भाषा में हुआ है। संस्कृत की रसवन्ती ध ारा हिन्दी में भी प्रवाहित हुई है। हिन्दी की सहायक बोलियों में भी गंगा का गौरव-गान हुआ है। चम्पारन-निवासी पण्डित रविकेश मिश्र ने भोजपुरी में श्गंगातरंगिनी' नामक काव्य रचा है। वाराणसी के पण्डित चन्द्रशेखर मिश्र के भोजपुरी खण्डकाव्य श्भीषमबाबा' में भी गंगा का प्रसंगतः वर्णन हुआ है। संस्कृत से हिन्दी तक गंगा की अभ्यर्थना में

रची गयी ऋचाओं का अकुण्ठ सौन्दर्य विद्यमान है। नदीश्वरी गंगा का यह काव्यार्णव अनन्तकाल तक लोकमंगल का साक्षी रहेगा-

शिव की शक्ति और संस्कृति के प्राणों का स्पन्दन है-
चन्दन भव-तापों में, शुभ संस्कारों का स्यन्दन है।
गंगे! सद्गति-प्रगतिमयी, लय-पूरित गीति-नदी तू-
भूमि-पृष्ठ पर लिखित ऋचा मानो शुचि हंसपदी तू। - जय जाह्नवी 4/25

***

मन्दिर समाचार

कोरोना वायरस की त्रासदी में जनहित कार्य

लॉक-डाउन में महावीर मन्दिर ने 54 लाख रु. से अधिक का अन्नदान किया

लॉक-डाउन अवधि में महावीर मन्दिर न्यास ने प्रवासी श्रमिकों के लिए 70,357 पका हुआ फूड पैकेट (महावीर रसोई) पटना जिला प्रशासन को उनके द्वारा बतायी गयी संख्या एवं भोज्य सामग्री के अनुसार दिया है। इसके अतिरिक्त महावीर मन्दिर न्यास ने अयोध्या जनपद के प्रवासी श्रमिकां को 79,083 राम रसोई फूड पैकेट जिला प्रशासन के सहयोग से बाँटा है। इसमें जीरा पुलाव और आलूदम दिया गया। इस अवधि में पटना कैंसर अस्पताल में मरीजों को मेनू के अनुसार 1,00,650 थालियाँ तथा उनके साथ शूश्रूषा में रह रहे व्यक्तियों को 92,345 थालियाँ भोजन के लिए उपलब्ध करायी गयी हैं। इस प्रकार, इस अवधि में कुल 2,42,435 लोगों को भोजन कराया गया है।

यदि एक व्यक्ति के भोजन पर औसतन 20 रु. का भी खर्च जोड़ा जाये, तो यह राशि 48,48,700=00 रु. यानी अड़तालीस लाख अड़तालीस हजार, सात सौ रुपये की होती है।

इसके अतिरिक्त, महावीर मन्दिर ने पटना जिला प्रशासन को 620 बैग सामान जिसमें चावल, दाल, आटा, नमक और तेल सौंपा है, जिसका मूल्य 4,11,590=00 रु. चार लाख है। इसी प्रकार, सीतामढ़ी में, जहाँ सीता रसोई चलती है, महावीर मन्दिर न्यास ने 300 बैग सामान सीतामढ़ी जिला प्रशासन को दिया है। इसका मूल्य 1,50,000=00 रु. (डेढ़ लाख) रुपया है।

इस तरह, महावीर मन्दिर न्यास ने कोरोना-वायरस के कारण लॉक-डाउन अवधि में अन्न दान पर कुल 54,10,290=00 यानी (चौवन लाख दस हजार दो सौ नब्बे) रुपये का खर्च उत्साह पूर्वक किया है। लॉक डाउन प्रारम्भ होने के प्रारम्भ में ही महावीर मन्दिर न्यास ने मुख्यमन्त्री राहत कोष में एक करोड़ की सहायता राशि का सहयोग किया था। इस प्रकार, अब तक एक करोड़ 54 लाख की राशि का सहयोग किया गया है।

महावीर मन्दिर न्यास ने पटना जिला प्रशासन को महावीर रसोई, अयोध्या जनपद प्रशासन को राम-रसोई तथा सीतामढ़ी जिला प्रशासन को सीता रसोई वितरित करने की अनुमति देने के लिए धन्यवाद दिया है और उन्हें यह भी आश्वस्त किया है कि भविष्य में भी यदि आवश्यकता पड़ेगी, तो महावीर मन्दिर न्यास सहर्ष सहयोग करेगा। कोरोना-वायरस के संग्राम में अन्न दान का संचालन महावीर मन्दिर के नैवेद्यम विभाग के प्रमुख आर- शेषाद्री तथा पर्यवेक्षण महावीर मन्दिर न्यास के सचिव आचार्य किशोर कुणाल एवं ट्रस्टी श्री बी.एस. दूबे के द्वारा किया गया है।

***

मातृभूमि-वंदना

(अथर्ववेद, काण्ड सं. 12, सूक्त सं. 1)

(क्रमशः पिछले अंक से जारी)

याप सर्प विजमाना विमृग्वरी यस्यामासन्नग्नयो ये अप्स्वन्तः।
परा दस्यून् ददती देवपीयूनिन्द्रं वृणाना पृथिवी न वृत्रं
शक्राय दध्रे वृषभाय वृष्णे॥37॥

जो हमारी भूमि ऐसी है कि इसे जितना ही खोजते रहो, इसमें लाभदायक सार वस्तु मिलती रहें, हिलते, डोलते, चलते मेघों में बिजली के आकार में अग्नि जिसमें है, वह हमारी मातृभूमि, सज्जनों को दुख देनेवाले दुष्टों का, ज्ञानी वीरों के हित के लिये नाश करती है, वह हमारी मातृभूमि शत्रुनाशक वीरो को ही अपने में धारण करती है॥37॥

यस्यां सदोहविर्धाने यूपो यस्यां निमीयते।
ब्रह्माणो यस्यामर्चन्त्यृग्भिः साम्ना यजुर्विदः।
युन्यन्ते यस्यामृत्विजः सोममिन्द्राय पातवे॥38॥

जहाँ वेद के जाननवाले ब्राह्मणों ने बार-बार यज्ञ किया है, इससे सिद्ध हुआ कि यह हमारी मातृभूमि पवित्र यज्ञभूमि है॥39॥

यस्यां पूर्वे भूतकृत ऋषयो गा उदानृचुः।
सप्त सत्रेण वेधसो यज्ञेन तपसा सह॥39॥

हमारी मातृभूमि ऐसी है जिसमें अतीन्द्रियार्थदर्शी सज्जनों की रक्षा के लिए बडे-बडे काम करनेवाले धर्मानुष्ठान और ज्ञानमार्गसे सुशोभित सत्पुरुष हुए हैं, उस मातृभूमि की हम स्तुति करते है॥39॥

सा नो भूमिरा दिशतु यद्धनं कामयामहे।
भगो अनुप्रयुङ्क्तामिन्द्र एतु पुरोगवः॥40॥

जितने सुख की हम इच्छा करें उतना मानभूमि हमें दे। ऐश्वर्य और धनसम्पन्न लोग अपने ऐश्वर्य और धनों से वीरों की सहायता करें और वीर पुरुष धुरीण होकर धर्य के साथ शत्रुओं का नाश करने के लिये आगे बढ़े॥40॥

यस्यां गायन्ति नृत्यन्ति भूम्यां मर्त्या व्यैलबाः।
युध्यन्ते यस्यामाक्रन्दो यस्यां वदति दुन्दुभिः।
सा नो भूमिः प्र णुदतां सपत्नानसपत्नं मा पृथिवी कृणोतु॥41॥

जिस भूमि में आनन्द बधाइयाँ बज रही हैं, जहाँ लोग प्रसन्न रह नाचते हैं, गाते हैं और वीर लोग वीरता के उत्साह में भी अपने राष्ट्र की रक्षा के लिये युद्ध करते- घोडे जहाँ हिनहिना रहे हैं, नगाडे बजते हैं, वह हमारी मातृभूमि हमारे शत्रुओं का नाश कर हमें शत्रुरहित करे॥41॥

(क्रमशः अगले अंक में जारी)

व्रतपर्व

आषाढ़, 2077 वि.सं.

षडशीतिसंक्रान्ति- 15 जून, 2020, सोमवार

मिथुन संक्रान्ति। इस दिन सूर्य मिथुन राशि में प्रवेश करेंगें।

योगिनी एकादशी- 17 जून, 2020, बुधवार

आषाढ कृष्ण एकादशी। मिथिला में इस दिन एकादशी 7बजकर 21 मिनट प्रात:काल तक है, अत: गृहस्थों एवं वैष्णवों दोनों के लिए इसी दिन एकादशी का व्रत होगा

सूर्यग्रहण- 21 जून 2020, रविवार

इस दिन मृगशिरा नक्षत्र में मिथुन राशि में सूर्यग्रहण होगा। अत: ज्योतिष शास्त्र के अनुसार मेष, सिंह, कन्या एवं मकर इन राशिवालों के लिए यह शुभफलदायक है, जबकि शेष राशि वालों के लिए अशुभ है। भारत में 9:15 प्रात: से 2:32 तक ग्रहण रहेगा। पूरे बिहार में इसकी अवधि लगभग 10:25 से 2:04 तक रहेगा। यह वलयाकार ग्रहण होगा। ज्योतिष की दृष्टि से यह महत्त्वपूर्ण सूर्यग्रहण है।

ग्रीष्म-नवरात्र आरम्भ- 22 जून 2020, सोमवार

आषाढ शुक्ल प्रतिपदा। इस दिन आषाढ मास की दुर्गापूजा रमभ हो रही है।प्रतिपदा तिथि मिथिला में 11:27 तक है तथा सोमवार होने के कारण दूसरा अर्द्धप्रहरा है अत: प्रात:काल में 6:52 से 8:35 बजे के समय को छोड़कर कलशस्थापन का मुहूर्त है।

जगन्नाथ रथयात्रा- 23 जून 2020, मंगलवार

आषाढ शुक्ल द्वितीया। इस दिन जगन्नाथपुरी में रथयात्रा आरम्भ होगी। भगवान् जगन्नाथ के दर्शन का यह सबसे महत्त्वपूर्ण दिन है।

***

रामावत संगत से जुड़िए

1) रामानन्दाचार्यजी द्वारा स्थापित सम्प्रदाय का नाम रामावत सम्प्रदाय था। रामानन्द-सम्प्रदाय में साधु और गृहस्थ दोनों होते हैं। किन्तु यह रामावत संगत गृहस्थों के लिए है। रामानन्दाचार्यजी का उद्घोष वाक्य- **'जात-पाँत पूछ नहीं कोय। हरि को भजै सो हरि को होय'** इसका मूल सिद्धान्त है।

2) इस रामावत संगत में यद्यपि सभी प्रमुख देवताओं की पूजा होगी; किन्तु ध्येय देव के रूप में सीताजी, रामजी एवं हनुमानजी होंगे। हनुमानजी को रुद्रावतार मानने के कारण शिव, पार्वती और गणेश की भी पूजा श्रद्धापूर्वक की जायेगी। राम विष्णु भगवान् के अवतार हैं; अतः विष्णु भगवान् और उनके सभी अवतारों के प्रति अतिशय श्रद्धाभाव रखते हुए उनकी भी पूजा होगी। श्रीराम सूर्यवंशी हैं; अतः सूर्य की भी पूजा पूरी श्रद्धा के साथ होगी।

3) इस रामावत-संगत में वेद, उपनिषद् से लेकर भागवत एवं अन्य पुराणों का नियमित अनुशीलन होगा; किन्तु गेय ग्रन्थ के रूप में रामायण (वाल्मीकि, अध्यात्म एवं रामचरितमानस) एवं गीता को सर्वोपरि स्थान मिलेगा। 'जय सियाराम जय हनुमान, संकटमोचन कृपानिधान' प्रमुख गेय पद होगा।

4) इस संगत के सदस्यों के लिए मांसाहार, मद्यपान, परस्त्री-गमन एवं परद्रव्य-हरण का निषेध रहेगा। रामावत संगत का हर सदस्य परोपकार को प्रवृत्त होगा एवं परपीड़न से बचेगा। हर दिन कम-से-कम एक नेक कार्य करने का प्रयास हर सदस्य करेगा।

5) भगवान् को तुलसी या वैजयन्ती की माला बहुत प्रिय है अतः भक्तों को इसे धारण करना चाहिए। विकल्प में रुद्राक्ष की माला का भी धारण किया जा सकता है। ऊर्ध्वपुण्ड्र या ललाट पर सिन्दूरी लाल टीका (गोलाकार में) करना चाहिए। पूर्व से धारित तिलक, माला आदि पूर्ववत् रहेंगे। स्त्रियाँ मंगलसूत्र-जैसे मांगलिक हार पहनेंगी; किन्तु स्त्री या पुरुष अनावश्यक आडम्बर या धन का प्रदर्शन नहीं करेंगे।

6) स्त्री या पुरुष एक दूसरे से मिलते समय राम-राम, जय सियाराम, जय सीताराम, हरि ॐ-जैसे शब्दों से सम्बोधन करेंगे और हाथ मिलाने की जगह करबद्ध रूप से प्रणाम करेंगें।।

7) रामावत संगत में मन्त्र-दीक्षा की अनूठी परम्परा होगी। जिस भक्त को जिस देवता के मन्त्र से दीक्षित होना है, उस देवता के कुछ मन्त्र लिखकर पात्र में रखे जायेंगे। आरती के पूर्व गीता के निम्नलिखित श्लोक द्वारा भक्त का संकल्प कराने के बाद उस पात्र को हनुमानजीके गर्भगृह में रखा जायेगा।

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः पृच्छामि त्वां धर्मसम्मूढचेताः।
यच्छ्रेयः स्यानिश्चितं ब्रूहि तन्मे शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्॥ (2.7)

8) आरती के बाद उस भक्त से मन्त्र लिखे पुर्जों में से कोई एक पुर्जा निकालने को कहा जायेगा। भक्त जो पुर्जा निकालेगा, वही उस भक्त का मन्त्र होगा। मन्दिर के पण्डित उस मन्त्र का अर्थ और प्रसंग बतला देंगे, बाद में उसके जप की विधि भी। वही उसकी मन्त्र-दीक्षा होगी। इस विधि में हनुमानजी परम-गुरु होंगे और वह मन्त्र उन्हीं के द्वारा प्रदत्त माना जायेगा। भक्त और भगवान् के बीच कोई अन्य नहीं होगा।

9) रामावत संगत से जुड़ने के लिए कोई शुल्क नहीं है। भक्ति के पथ पर चलते हुए सात्त्विक जीवन-यापन, समदृष्टि और परोपकार करते रहने का संकल्प-पत्र भरना ही दीक्षा-शुल्क है। आपको सिर्फ इस http://mahavirmandirpatna.org/Ramavat-sangat.html पर क्लिक करना होगा। मन्दिर से सम्पुष्टि मिलते ही आप इसके सदस्य बन जायेंगे।

**

पटना में वितरण हेतु आपदा प्रबन्धन विभाग को महावीर मन्दिर द्वारा उपलब्ध करायी गयी खाद्य सामग्री

राम-रसोई की ओर से अयोध्या एवं फैजाबाद में जरूरतमंद और भूखे लोगों को भोजन

सीतामढ़ी में सीता-रसोई की ओर से वितरण हेतु जिला प्रशासन को उपलब्ध करायी गयी सामग्री

पत्रिका-पंजीयन सं. 52257/90

।। जय जय सियाराम, जय जय हनुमान; संकटमोचन कृपानिधान।।

रामावत संगत के आठ स्तम्भ

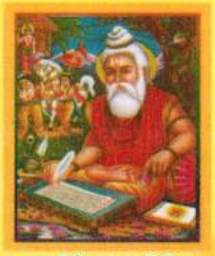

महर्षि वाल्मीकि

धर्ममर्मज्ञ मुनि व्यास

आदि शंकराचार्य

युगप्रवर्तक रामानन्द

क्रान्तदर्शी कबीर

संत-शिरोमणि रविदास

लोकनायक तुलसीदास

महावीर मन्दिर, पटना
द्वारा स्थापित

धर्म का ध्रुवतारा: विवेकानन्द

महावीर मन्दिर, पटना, 800001
0612-2223789, 3223293
Email: mahavirmandir@gmail.com
web: mahavirmandirpatna.org

।। जय जय सियाराम, जय जय हनुमान; संकटमोचन कृपानिधान।।

।। जय जय सियाराम, जय जय हनुमान; संकटमोचन कृपानिधान।।
।। जय जय सियाराम, जय जय हनुमान; संकटमोचन कृपानिधान।।
।। जय जय सियाराम, जय जय हनुमान; संकटमोचन कृपानिधान।।

श्री महावीर स्थान न्यास समिति, पटना द्वारा निःशुल्क ई-बुक के रूप में प्रकाशित